जुलाई–दिसंबर, 2021

अंक
06

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका

वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक
अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

उप–संरक्षक
एस.के. थॉमस
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक मंडल

मुख्य संपादक
डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी
रसायन विज्ञान एवं जैव पूर्वेक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक एवं समन्वयक
श्री रामबीर सिंह
वैज्ञानिक–ई
विस्तार प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सहायक संपादक
श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (रा.भा.)
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

रचना एवं अभिन्यास
अमोल राऊत
तकनीकीय आर्टिस्ट
वर्गीकरण वनस्पति शाखा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्रकाशन
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

(पत्रिका में व्यक्त तथ्य, आँकड़ें और विचार रचनाकारों के अपने हैं, सम्पादक मंडल का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।)

अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

निदेशक की कलम से ....

अति हर्ष का विषय है कि **"वन अनुसंधान ई–पत्रिका"** के अंक–06 का प्रकाशन किया जा रहा है। इस पत्रिका के माध्यम से वानिकी से संबंधित अनुसंधान कार्यों को सभी पाठकवर्ग तक पहुंचाया जा रहा है। विकास के वर्तमान के दौर में अनुसंधान कार्यों को सीमित क्षेत्र तक ही विस्तारित नहीं किया जा सकता अपितु इसके व्यापक प्रचार–प्रसार एवं विस्तार की आवश्यकता है। आज आवश्यकता है कि विज्ञान में किए गए शोध कार्यों का लाभ प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचे। वन अनुसंधान संस्थान के स्तर पर वानिकी अनुसंधान की उपलब्धियां जनमानस तक प्रेक्षित करना हमारा मुख्य दायित्व है। अतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए वन अनुसंधान ई–पत्रिका का छमाही प्रकाशन निरतंर किया जा रहा है।

वानिकी एवं कृषि वानिकी क्षेत्रों में विकास होना आज के समय की महत्वपूर्ण मांगों में से एक है। जलवायु परिवर्तन की वर्तमान समस्याओं के सुधार में भी वानिकी एवं कृषि वानिकी क्षेत्रों का त्वरित एवं व्यापक विकास होना भी अनिवार्य हो गया है। ऐसे समय में यह पत्रिका महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

पत्रिका में महत्वपूर्ण लेखों को स्थान दिया जाता है। तथा भाषा की सरल एवं समझने योग्य शैली आम वर्ग के लोगों की रूचि बढ़ाने हेतु आवश्यक है। अतः इस पत्रिका हेतु अधिक से अधिक लेखों की आवश्यकता है।

मुझे उम्मीद है कि यह पत्रिका सचेत पाठकवर्ग एव विद्याथियों की आकांक्षाओं को पूरा कर पायेगी। परिषद् के अंतर्गत सभी वैज्ञानिकों/अधिकारियों/कर्मचारियों/शोद्यार्थियों से आशा है कि वे सभी इस पत्रिका के संवर्धन में अपना योगदान देते रहेंगे। पत्रिका के संपादन से जुड़े सभी को मेरा हार्दिक अभिनन्दन।

अरुण सिंह रावत
निदेशक

एस.के. थॉमस
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

कुलसचिव की कलम से ....

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है तथा हिन्दी को संवैधानिक रूप से राजभाषा का दर्जा भी दिया गया है। हिन्दी सर्वाधिक लोगों द्वारा लिखी एवं बोली जाने वाली भाषा है। **"वन अनुसंधान ई–पत्रिका"** का प्रकाशन भी हिन्दी भाषा में किया जा रहा है। अतः पत्रिका को सर्वाधिक लोगों तक पहुँचाने में हिन्दी सशक्त है और इसका सफलतम उदाहरण हमारी यह पत्रिका है।

इस पत्रिका में वानिकी शोधों पर आधारित उत्कृष्ट लेखों को स्थान दिया गया है। विदित है कि बहुत से लोगों को उनके क्षेत्र में पाए जाने वाले वन–वृक्षों की जानकारी तो है परंतु उसके अधिकाधिक उपयोग, संवर्धन, संरक्षण आदि संबंधी ज्ञान वैज्ञानिक शोधों पर आधारित होती है। हमारे भारत में विभिन्न प्रकार के जंगलों में ऐसे वृक्ष तथा औषधीय पादप पाए जाते हैं जिन्हें अधिक संख्या में उत्पादित करने की आवश्यकता है। अतः इस पत्रिका के अध्येता इसके छमाही अंको को निरंतर पढ़कर वानिकी एवं सामाजिक वानिकी का उनकी आर्थिक समृद्धि, भूमि उपयोगिता, पर्यावरणीय लाभ एवं अन्य जानकारियों प्राप्त कर सकते है।

पत्रिका के छठे अंक के प्रकाशन में जिन्होंने महत्वपूर्ण सहयोग दिया है मैं उनको आभार व्यक्त करता हूँ। मैं उम्मीद करता हूँ कि यह अंक पाठकवर्ग हेतु बहुत उपयोगी रहेगा।

एस के थॉमस

एस.के. थॉमस
कुलसचिव

डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

मुख्य संपादक की कलम से ....

सुधी पाठकों के समक्ष **"वन अनुसंधान ई–पत्रिका"** के अंक–06 को प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। इस हिन्दी पत्रिका के द्वारा वानिकी से संबंधित विभिन्न विषयों पर लिखी गयी रचनाओं को वानिकी से जुड़े समस्त हितधारकों तक उनकी जानकारी तथा उपयोग के लिए पहुँचाया जाता है।

पत्रिका के इस अंक में विविध लेखों को समावेशित किया गया है। वनीकरण कार्यक्रमों के लिए आवश्यक वृक्ष उत्पादन हेतु पूर्वोत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण बहुउद्देश्यीय वृक्ष प्रजाति *'मेलिना अर्बोरिया रॉक्सब'* के कायिक प्रबंधन (पेज–1) तथा सागौन के बीज : फलोद्यानों के उचित वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा अधिक बीज उत्पादन (पेज–4) की विधियों के बारे में जानकारी दी गयी है। सैलिक्स के विभिन्न कीटों तथा इनके प्रबंधन के बारे में जानना बड़ा महत्वपूर्ण है (पेज–7)। सतत विकास में बाँस की भूमिका (पेज–9) एवं समाज की हित की वानिकी : सामाजिक वानिकी (पेज–11) लवणीय भूमि के सुधार में हेलोफाइट्स का महत्व (पेज–14) असमीया समाजः जीवन में मेरेंटेसी पादप परिवार का महत्व की जानकारी इन पौधों के उपयोग हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है (पेज–17) तथा पॉलीप्लोइडी : वन वृक्षों में विकास दर और जैव रसायनों का उत्पादन बढ़ाने की विधि को बड़े रोचक तरीके से प्रस्तुत किया गया है (पेज–20)।

बौहिनिया वेरिएगेटा (कचनार): एक महत्वपूर्ण बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजाति (पेज–22) अन्य रोचक लेखों में तीन पारिस्थितिकी तंत्र का संगम विरात्रा माता मंदिर, चौहटन (बाड़मेर) (पेज–25) तथा कैर (*कैप्पारिस डेसिडुआ*)– शुष्क क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण अकाल पादप (पेज–27) के बारे में दी गई जानकारी से इन वृक्षों के उपयोग बढ़ाने हेतु ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। बाँस के आभूषण–उपेक्षित रत्न (पेज–29) तथा आभासी जल (वर्चुअल पानी) (पेज–31) एवं मानस राष्ट्रीन उद्यान–पूर्वोत्तर भारत में एक सींग वाले भारतीय गैंडों का सफल स्थानांतरण एवं पुनर्स्थापन (पेज–33) से संबंधित जानकारी भी संकलित की गयी है। पत्रिका के अंत में वन अनुसंधान संस्थान द्वारा जुलाई–दिसंबर 2021 अवधि के दौरान आयोजित कार्यक्रमों की झलकिंया भी प्रस्तुत की गयी है।

मुझे आशा है कि पत्रिका का यह अंक बहुत उपयोगी होगा। मैं इस अंक के सभी सम्मानित लेखकों तथा पत्रिका के सम्पादन कार्य से जुड़े सभी सहयोगियों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी

वन अनुसंधान ई–पत्रिका
जुलाई–दिसंबर, 2021

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	निदेशक की कलम से		
	कुलसचिव की कलम से		
	मुख्य संपादक की कलम से		
1	पूर्वोत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण बहुउद्देश्यीय वृक्ष प्रजाति *'मेलिना अर्बोरिया रॉक्सब'* के कायिक प्रबंधन	डॉ. मनीष कुमार सिंह	1-3
2	सागौन के बीज : फलोद्यानों के उचित वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा अधिक बीज उत्पादन	डॉ. प्रमोद कुमार, पवन कुमार पटेल, विमल पैन्द्रो, डॉ. प्रेम कुमार राणा, मनोज कुमार पूसाम	4-6
3	सैलिक्स के कीट एवं उनका प्रबंधन	पवन कुमार, अखिल कुमार, प्रियंका ठाकुर एवं आँचल वर्मा	7-8
4	सतत विकास में बाँस की भूमिका	पूजा शर्मा	9-10
5	समाज के हित की वानिकी : सामाजिक वानिकी	डॉ. प्रतिमा पटेल	11-13
6	लवणीय भूमि के सुधार में हेलोफाइट्स का महत्व	डॉ. अदिति टेलर, एवं डॉ. अंजलि जोशी	14-16
7	असमीया समाजः जीवन में मेरेंटेसी पादप परिवार का महत्व	अंकुर ज्योति सइकीया, डॉ. अजय कुमार, प्रदीप कुमार हजारिका एवं अपूर्व कुमार शर्मा	17-19
8	पॉलीप्लोइडी : वन वृक्षों में विकास दर और जैव रसायनों का उत्पादन बढ़ाने की विधि	डॉ. अंजलि जोशी, एवं डॉ. अदिति टेलर	20-21
9	*बौहिनिया वेरिएगेटा* (कचनार): एक महत्वपूर्ण बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजाति	डॉ. स्वर्ण लता एवं दृष्टि शर्मा	22-24
10	तीन पारिस्थितिकी तंत्र का संगम विरात्रा माता मंदिर, चौहटन (बाड़मेर)	नरेन्द्र कुमार कडेला, श्री एस. आर. बालोच एवं कुमारी रेखा राना	25-26
11	कैर (*कैप्पारिस डेसिडुआ*)– शुष्क क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण अकाल पादप	देशा मीणा एवं स्वाति प्रसाद	27-28
12	बाँस के आभूषण–उपेक्षित रत्न	डॉ. टी. एन. मनोहरा	29-30
13	आभासी जल (वर्चुअल पानी)	राजेश कुमार मिश्रा	31-32
14	मानस राष्ट्रीन उद्यान–पूर्वोत्तर भारत में एक सींग वाले भारतीय गैंडों का सफल स्थानांतरण एवं पुनर्स्थापन	अजय कुमार, सौरव बरुआ एवं चिरंजीत हजारिका	33-34
15	जुलाई–दिसंबर, 2021 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम		35-36

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

पूर्वोत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण बहुउद्देश्यीय वृक्ष प्रजाति *'मेलिना अर्बोरिया रोक्सब'* का कायिक प्रवर्धन

डॉ. मनीष कुमार सिंह, वैज्ञानिक–डी
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

परिचय

मेलिना अर्बोरिया रोक्सब (कुलः *लैमियेसी*) य पूर्वोत्तर भारत मे व्यावसायिक रूप से लकड़ी प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण प्रजाति है। यह एक लंबा पेड़ है, जोकि ऊंचाई में 30–35 मीटर तक और 3–4 मीटर व्यास तक होता है। छाल हल्के भूरे रंग की होती है, उम्र बढ़ने के साथ, छाल पर हल्के रंग के पैच दिखते है जो कि बाद में उतर जाती है। इस प्रजाति को सामान्यतः भारत और अन्य दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में लकड़ी, चारे और औद्योगिक उद्देश्य के लिए बड़े पैमाने पर उगाई जाने वाली सफेद सागौन के रूप में जाना जाता है (M~वोरक, 2003)। भारत में यह पेड़ प्राकृतिक रूप से सामान्यतः असम, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में पाई जाती है। लकड़ी के लिए व्यापक दोहन के कारण इस क्षेत्र में इस प्रजाति की कमी देखने को मिल रही है। वृक्षारोपण के लिए *मेलिना आर्बोरिया* का प्रवर्धन, बीज से या रूट कटिंग द्वारा की जा सकती है। हालाँकि, बीजों के माध्यम से प्राकृतिक पुनर्जनन संतोषजनक नहीं है (ओकोरो 1983, हार्टमैन और कोस्टर 1975) क्योंकि फल के अधिक पकने या गूदे वाले हिस्से के अधिक किण्वन से भ्रूण की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार रूट कटिंग और बड ग्राफ्टिंग तकनीकों के माध्यम से वानस्पतिक प्रवर्धन को एक वैकल्पिक प्रवर्धन–विधि के रूप देखा जा सकता है। इस पेड़ की प्रजाति में अनियमित बीज बनने, लंबे समय पर फूल आने और फलने के अंतरालों, खराब बीज सेटिंग, अंकुरण का प्रतिशत कम होने और बीज सुप्तता की अवांछनीय छोटी या लंबी अवधि आदि समस्या भी होती है। (सुरेंद्रन और सीतालक्ष्मी, 1987)।

वानस्पति प्रवर्धन *मेलिना आर्बोरिया* के वानस्पतिक प्रवर्धन की कई रिपोर्टें हैं जैसे कीः– वर्षाकाल में लगाए गए बड़े कलमों से जड़ें आसानी से विकसित हो जाते है, लेकिन जड़ें केवल एक स्पष्ट शुष्क मौसम के बिना वाले जलवायु में ही जीवित रहेंगे। ग्रीव्स (1981) ने भी मेक्सिको में कार्य की जानकारी दी, जिसमें स्प्राउटिंग और रूटिंग को बढ़ावा देने के लिए रूटिंग मीडिया में क्षैतिज रूप से स्टेम सेट के विभाजित वर्गों का उपयोग किया गया था। ज़ीज़र (1998) ने कहा कि *मेलिना आर्बोरिया* को सफलतापूर्वक बड–ग्राफ्ट से तैयार किया जा सकता है।

रूट कटिंगः

क्लोनल नर्सरी स्टॉक उत्पादन के लिए वानस्पतिक प्रवर्धन का सबसे सामान्य तरीका रूट कटिंग है (बोरपुजरी और कचारी, 2019, उज्ज्वला व अन्य 2013, मात्सुने, 2003)। रूटेड कटिंग्स के लिए रोपण सामग्री को स्वस्थ पौधे से प्रातः काल में एकत्र करना चाहिए। पौधे में पानी की कमी से बचने हेतु संग्रह के तुरंत बाद पानी की एक बाल्टी में अंकुर डाल देना चाहिए और संग्रह कार्य पूरा नहीं होने तक छाया में रखा जाना चाहिए।

काटने की तैयारी के लिए निम्नलिखित प्रक्रियाओं का पालन किया जाता हैः

- कटिंग शूट स्प्राउट्स से तैयार किए जाते हैं जो लगभग 16–18 सेमी लंबे, 1.5 से 2 से.मी. व्यास तक होते है तथा जिसमें 2.4 डोरमैंट नोड्स होते हैं।
- पत्तियां 1/4 से 1/3 तक छंटनी की जाती हैं, टर्मिनल कलियों के नीचे छोटे नए पत्ते को छोड़कर टर्मिनल कलियों को काट दिया जाता है।
- कटिंग के आधार को नोड के ठीक नीचे फिर से काट दिया जाता है और शीर्ष भाग 1.5–2.5 से.मी. ऊपर काट दिया जाता है और फिर तुरंत पानी में डुबो दिया जाता है।
- 10 से 15 मिनट के लिए बावेस्टिन (0.1%) जैसे कवकनाशी केमिकल से कटिंग का उपचार करें।
- वातन से बचने के लिए शूट कटिंग के ऊपरी हिस्से को गर्म वैक्स से सील करें।
- निचले भाग को रूटिंग हॉरमोन (जैसे कि IBA or NAA (200 चचउ) सोल्यूशंस मे रात भर के लिए रख दें।
- फिर मिट्टी के गमले या पात्र में लगा दें (रेत : मिट्टीः एफवाईएम / 1:1:1)।
- रोपण के बाद नियमित अंतराल पर पानी देना चाहिए ताकि मिट्टी नम रहे। कटाई का उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त का महीना होता है।

रख–रखावः

बारिश और धूप से बचाने के लिए रूट कटिंग को उचित स्थान पर या नेट हाउस में रखा जाना चाहिए। जब मिट्टी सूख जाए तो सिंचाई करनी चाहिए। निराई–गुड़ाई नियमित अंतराल में करनी चाहिए। कटाई का उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त माह के दौरान होता है।

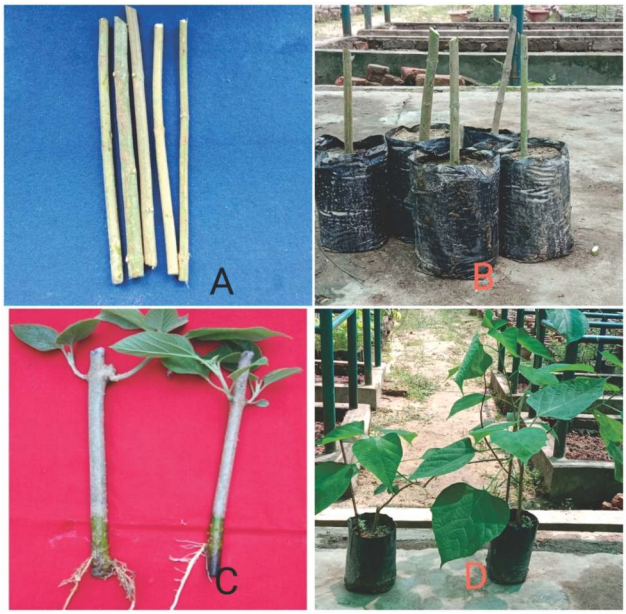

चित्र: 01: A. शाखा काटने की तैयारी B. प्लास्टिक बैग में रोपण C. रोपण के बाद 25–30 जड़ और अंकुर निकलना D. शाखा की कलमों से तैयार किया गया एक वर्ष का पुराना पौधा।

बड ग्राफ्टिंग:

बड ग्राफ्टिंग प्रवर्धन ऐसी तकनीक है, जिसमें आपकी चुनी हुई पेड़ की किस्म से रूट स्टॉक (स्टॉक) में वानस्पति कली (साइअन बड) को ग्राफ्ट किया जाता है। *मेलिना आर्बोरिया* ग्राफ्टिंग के लिए स्टॉक और कलम (साइअन) कली तैयार करने की विधि निम्नलिखित है –

स्टॉक (Stock) की तैयारी

- स्टॉक तैयार करने के लिए एक से दो वर्ष पुराने स्वस्थ जड़ वाले पौधों का चयन करें।
- सभी सहायक जड़ों को हटा दें और मुख्य जड़ के 2/3 भाग को नीचे कर दें।
- सभी पत्तियों और शाखाओं को हटा दें और मुख्य शूट को जमीन से 16–18 से.मी. ऊपर काट लें।
- वातन से बचने के लिए ऊपरी हिस्से को मोम से सील करें।
- स्टॉक में कली से 1 इंच नीचे काटें, दूसरा कट लगभग 3/4 इंच ऊपर करें और पहले कट को मिलाने के लिए चाकू को नीचे की ओर खींचें। फिर चिप को हटा दें।

कलम (Scion) की तैयारी:

- चयनित वृक्ष प्रजातियों में से टहनी निकाल लें।
- सभी पत्तियों को हटा दें और कली ग्राफ्टिंग के लिए निकाली जाने वाली कली का चयन करें।
- कली को 1 इंच नीचे काटकर, दूसरा लगभग 3/4 इंच ऊंचा काट कर निकाल लें और पहले कट को मिलाने के लिए चाकू को नीचे की ओर खींचें।
- कलम (कली निकालने के लिए) और रूटस्टॉक (कली डालने के लिए) दोनों पर कट बिल्कुल समान होने चाहिए।
- ग्राफ्टिंग टैप या पॉलीथिन स्ट्रिप की मदद से कलम (scion) बड को रूट स्टॉक में ठीक से डालें और लपेटें।
- कट के सभी किनारों को अच्छी तरह से ढकना चाहिए, अगर ढका नहीं गया तो कली सूख जाएगी।
- ग्राफ्टेड स्टॉक को मिट्टी के गमले या पात्र में डालें (रेतः मिट्टीः एफवाईएम /1:1:1)।

रखरखाव:

ग्राफ्टेड पौधों को बारिश और धूप से बचाने के लिए उचित स्थान या नेट हाउस में रखा जाना चाहिए। जब मिट्टी सूख जाए तो नियमित सिंचाई करना जरूरी है। निराई–गुड़ाई नियमित अंतराल में करनी चाहिए। स्टॉक से साइड स्प्राउट को समय–समय पर हटा देना चाहिए और यदि ऐसा नहीं किया गया तो कलम से स्प्राउट की वृद्धि नहीं हो पाएगी। बड–ग्राफ्टिंग के लिए उपयुक्त समय अगस्त–सितंबर और जनवरी–फरवरी के दौरान है। कली ग्राफ्टिंग के 25 दिनों के पश्चात नया अंकुर निकलता है।

निष्कर्ष:

मेलिना अर्बोरिया के व्यापक उपयोगों को देखते हुए पूर्वोतर भारत के लगभग हर छोटे–बड़े वृक्षारोपण कार्यक्रम के लिए इस पेड़ का प्रवर्धन किया जाता हैं। वानस्पतिक प्रसार तकनीकों में हालिया प्रगति के जरिये हम क्लोनल परीक्षण और क्लोनल परिनियोजन चक्र को छोटा कर, भारी मात्रा में वांछित आनुवंशिक संरचना वाले पौधें तैयार कर सकते हैं और उनका प्रयोग वनीकरण कार्यक्रमों में कर सकते हैं। इससे न केवल गुणवत्तापूर्ण वृक्ष उत्पादन होगा अपितु किसानों की आय में भी वृद्धि होगी।

चित्र: 02 A- साइअन (Scion) की कली को साइअन कटिंग से हटा दिया गया B- स्टॉक से छाल हटाना C- पॉलीथिन स्ट्रिप की मदद से साइअन बड को रूट स्टॉक में लपेटना D- ग्राफ्टेड भाग से नया अंकुर निकलना E. चार पत्ती की अवस्था में F. कली ग्राफ्टिंग के 45–50 दिनों के पश्चात अंकुर।

संदर्भ–

वोरक, डबल्यू.एस. (2004), वर्ल्ड व्यू ऑफ़ *मेलिना अर्बोरिया* अपॉर्चुनिटीज एंड चैलेंजेज, न्यू फॉरेस्ट्स, 28: 111.126.

बोरपुजारी, पी.पी. एंड कछारी, जे. (2019). क्लोनल प्रापगेशन ऑफ़ *मेलिना अर्बोरिया रोक्सब.* एन इम्पोर्टेन्ट मल्टीपर्पस ट्री स्पीशीज ऑफ़ नॉर्थईस्टर्न रीजन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ हर्बल मेडिसिन. 7(6): 10–15.

ज़ैसेर, डी. (1998). वेजटैटिव प्रापगेशन ऑफ़ मेलिना (*मेलिना अर्बोरिया रोक्सब.*). इनः कैमकोर. इंटरनेशनल ट्री ब्रीडिंग शार्ट कोर्स बुक. नार्थ कैरोलिना स्टेट यूनिवर्सिटी, रैले, नार्थ कैरोलिना, यूएसए.

ग्रीव्स ए. (1981). *मेलिना अर्बोरिया.* फॉरेस्ट्री ऐब्स्ट्रैक्ट्स. कॉमन वेल्थ फॉर. ब्यूरो 42(6): 227–258.

ओकोरो, ओ.ओ. (1983). रेवलूशनाइज़िंग प्रोसीजर गार्डिंग जी. अर्बोरिया सीड इन नाइजीरिया. इनः प्रॉसेस ऑफ़ दी 13जी एनुअल कांफ्रेंस फॉरेस्ट्री एसोसिएशन ऑफ़ नाइजीरिया. बेनिन. पीपी.1–12.

हार्टमैन, एच.टी. एंड कोस्टरएडी.ई. (1975). प्लांट प्रापगेशनस. थर्ड एडिशन, पब्लिक प्रेन्टिसेस हॉल इंक. एनलेवुड क्लिफ्स एन. जे. पीपी 66.

सुरेंद्रन, टी. एंड सीतालक्ष्मी, के.के. (1987). वेजटैटिव प्रापगेशन ऑफ़ सम इम्पोर्टेन्ट ट्री स्पीशीज बाय रूटिंग कटिंग्स. केरला फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट पीचीए थ्रिस्सूर, रिसर्च रिपोर्टएपीपी. 50.

मात्सूने के. 2003. मइक्रोप्रापगेशन ऑफ़ *मेलिना अर्बोरिया* बाय शूट एपैक्स कल्चर. इनः वोरक डबल्यू.एस.ए होडगे जी.आर.ए वुडब्रिज डबल्यू.सी. एंड रोमेरो जे.एल. (एड्स) रीसेंट एडवांसेज विथ मेलिना अर्बोरिया. सीडी–रोम. कैमकोर, नार्थ कैरोलिना स्टेट यूनिवर्सिटी, रैले, नार्थ कैरोलिना, यूएसए.

उज्ज्वला डी, रामबाबू एम, रामास्वामी एम. क्लोनल प्रापगेशन ऑफ़ फारेस्ट ट्रीज ऑफ़ *मेलिना अर्बोरिया रोक्सब.* जर्नल ऑफ़ माइक्रोबायोलॉजी बायोटेक्नोलॉजी रिसर्च. 2013; 3(2):16.18.

डॉ. मनीष कुमार सिंह
वैज्ञानिक–डी

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

सागौन के बीज : फलोद्यानों के उचित वैज्ञानिक प्रबन्धन द्वारा अधिक बीज उत्पादन

डॉ. प्रमोद कुमार, वैज्ञानिक, पवन कुमार पटेल, कनिष्ठ परियोजना अध्येता, विमल पैन्द्रो, कनिष्ठ परियोजना अध्येता, डॉ. प्रेम कुमार राणा, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी, मनोज कुमार पूसाम, वरिष्ठ तकनीशियन
आनुवंशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग, उष्णकटिबन्धीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

विश्व खाद्य संगठन (एफ.ए.ओ.) द्वारा जून में अपनाया गया वन आनुवंशिक संसाधनों का वैश्विक मूल्यांकन राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों को सुदृढ़ करने के लिए कहता है, जो कि वृक्षारोपण के लिए आनुवंशिक रूप से उन्नत बीजों की पर्याप्त मात्रा प्रदान करने के लिए आई.यू.सी.एन. एवं यू.एन.ई.पी. द्वारा विश्व स्तर पर गुणवत्ता रूप से 3.5 मिलियन वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को वर्ष 2030 तक पुनर्स्थापित करने की प्रतिबद्धता को स्वीकार करता है। उचित रूप से विकसित और वैज्ञानिक रूप से प्रबंधित बीज फलोद्यान उन्नत बीजों की उपलब्धता और विश्वसनीयता को सुनिश्चित कर सकते हैं ।

बृहद स्तर पर वृक्षारोपण की आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रचुर मात्रा में रोपण सामग्री के लिए बीज प्रमुख स्रोत है। व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण काष्ठ की अधिकांश वृक्ष प्रजातियों को पादप कार्यिकी कारणों से स्टेम कटिंग या अन्य तरीकों से प्रचुर मात्रा में तैयार करना बहुत मुश्किल होता है अतः बड़ी मात्रा में उच्च गुणवत्ता वाले वन प्रजातियों के बीजों की उपलब्धता बीज उत्पादन क्षेत्रों एवं बीज फलोद्यानों के द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है। ऐसे वन क्षेत्रों को अन्य उद्देश्यों के लिए भी संरचित किया गया है, जिसमें वांछनीय लक्षणों के साथ बेहतर गुणवत्ता वाले जर्मप्लाज्म का उत्पादन शामिल है जैसे कि अधिक वृद्धि एवं ताक़त, रोग प्रतिरोध और स्थानीय या क्षेत्रीय आनुवंशिक विविधता को समाहित करना और बनाए रखना। बीज उत्पादन क्षेत्रों (एस.पी.ए.) को या तो मौजूदा प्राकृतिक स्टैंड में या अच्छे वृद्धि दर को दर्शित कर रहे रोपण क्षेत्रों में स्थापित किया जा सकता है जबकि बीज फलोद्यानों की स्थापना बाह्य रूप से उच्च गुणवत्तापूर्ण वृक्षों से कायिक प्रजनन द्वारा तैयार किये गए पौधों अथवा बीजांकुरों द्वारा की जाती है। कायिक प्रजनन यथा शूट कटिंग्स अथवा ऊतक संवर्धन (टिश्यू कल्चर) द्वारा तैयार किये गए पौधों द्वारा स्थापित किये गए फलोद्यान को क्लोनल बीज फलोद्यान (सी.एस.ओ.) कहा जाता है जबकि उच्च गुणवत्तापूर्ण वृक्षों के बीजों से पौधे तैयार कर स्थापित किये गए फलोद्यान को बीजांकुर बीज फलोद्यान (एस.एस.ओ.) कहा जाता है। बीज एकत्रित करने के लिए स्थल की सुगम उपलब्धता एवं उसकी सुरक्षा इन क्षेत्रों की स्थापना के आधार है।

बीज उत्पादन क्षेत्र अधिक विस्तृत और उच्च तकनीकी वृक्ष प्रजनन गतिविधियों के लिए एक सुगम साधन के रूप में है। यद्यपि, बीज उत्पादन क्षेत्र के बीजों से विकसित किये गए रोपण से आनुवंशिक लाभ (उच्च उत्पादकता) की मात्रा बहुत अधिक नहीं होती है, फिर भी यह गैर–चयनित स्टैंड से प्राप्त बीज से विकसित किये गए रोपण की तुलना में अधिक होता है। बाहरी स्रोतों से परागकणों की कम उपलब्धता, न्यूनतम स्वपन और संदूषण के साथ फेनोटाइपिक (बाह्य संरचना) रूप से बेहतर वृक्षों की उपस्थिति के माध्यम से आनुवंशिक रूप से उन्नत बीजों के उत्पादन का उद्देश्य पूरा होता है। मध्य भारत के राज्यों, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र में सागौन का लगभग 1400 हैक्टेयर बीज उत्पादन क्षेत्र, 780 हैक्टेयर क्षेत्र क्लोनल बीज फलोद्यान एवं 240 हैक्टेयर क्षेत्र बीजांकुर बीज फलोद्यान है। इन राज्यों में बीज उत्पादन के अधिकांश क्षेत्र वर्ष 1992 से वर्ष 1998 के दौरान विश्व बैंक की सहायता प्राप्त परियोजना के कार्यान्वयन के दौरान स्थापित किए गए थे। ये एस.पी.ए. ज्यादातर सागौन के प्राकृतिक वनों के अंतर्गत स्थापित किये गए और इनका उपयोग बीज संग्रहण के लिए किया गया। अधिकांश बीज उत्पादन क्षेत्र अब परिपक्व अवस्था के हो गए हैं और उचित रूप से प्रबंधित भी नहीं हैं, जिसके कारण अपेक्षा से कम मात्रा में बीज का उत्पादन होता है। सागौन के क्लोनल फलोद्यान (सी. एस.ओ., एस.एस.ओ.) जो बेहतर गुणवत्ता के बीजों के उद्देश्य से समान्तर रूप से स्थापित किए गए थे, वे भी विभिन्न कारणों से पर्याप्त मात्रा में बीज उत्पादक नहीं हैं। इसलिए अधिक उत्पादकता हेतु इन फलोद्यानों की स्थापना के आरम्भ से ही इनका वैज्ञानिक रूप से प्रबन्धन आवश्यक है।

वर्तमान समय में बीज फलोद्यान स्थापित करना वानिकी क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। इन फलोद्यानों से प्राप्त बीज उच्च आनुवंशिक गुणों के होने के कारण इनके पौध से स्थापित रोपण कम समय में ही अधिक उत्पादकता प्रदान करते हैं। मूल रूप से बीज फलोद्यानों की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए की जाती है –

- बेहतर गुणवत्ता वाले ज्ञात स्त्रोत के बीज की निरंतर आपूर्ति को सुनिश्चित करना

- स्थानीय बीज की उपलब्धता और आनुवंशिक विविधता में वृद्धि
- क्षेत्रीय जैव विविधता में सुधार और निम्न सतह पर उपलब्ध प्रजातियों के घनत्व में वृद्धि
- मृदा संरक्षण एवं सुधार

चित्र :01 सागौन का बीज उत्पादन क्षेत्र (एस.पी.ए.)

चित्रः 02 सागौन का क्लोनल बीज फलोद्यान (सी.एस.ओ.)

चित्रः 03 सागौन का बीजांकुर बीज फलोद्यान (एस.एस.ओ.)

बीज फलोद्यानों के कम मात्रा में बीज उत्पादन के कारणः

मध्य भारत के राज्यों मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं महाराष्ट्र में सागौन के बीज फलोद्यानों के व्यापक सर्वेक्षण में निम्न कारणों से कम मात्रा में बीज उत्पादन को देखा गया –

- पुष्पन का बहुतायत में न होना
- वृक्षों के बीच कम अंतराल होने पर उनके क्राउन को पर्याप्त प्रकाश न मिलने से पुष्पन प्रभावित होना
- पुष्प के मादा जननांग (स्टिग्मा) द्वारा सीमित समय हेतु परागकण ग्रहण कर निषेचन की क्षमता
- विभिन्न पारिस्थितिकी क्षेत्रों की क्लोनों के पुष्पन के समय में असमानता
- विभिन्न क्लोनों के मध्य कम आनुवंशिकीय भिन्नता एवं स्व बेजोड़ता (सेल्फ इन्कम्पटेबिलिटी)
- बीज फलोद्यान क्षेत्र में परागकीटों की कम उपलब्धता एवं भोजन ढूँढने की उनकी प्रवृति
- तेज वर्षा एवं कीटों अथवा फफूंद जनित रोगों के कारण अपरिपक्व फलों का गिरना
- मृदा में पोषक तत्वों का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होना

बीज फलोद्यान का प्रबंधनः

बीज फलोद्यान क्षेत्र को उचित और वैज्ञानिक रूप से प्रबंधित किया जाना चाहिए, क्योंकि यह भविष्य के रोपण के स्रोत के रूप में कार्य करता है। यदि हम अपने बीज फलोद्यान क्षेत्र का प्रबंधन ठीक से नहीं करते हैं, तो हमें निम्न स्तर (कम गुणवत्ता) का बीज प्राप्त होगा जो हमारे भविष्य के वृक्षारोपण एवं उसकी उत्पादकता को प्रभावित करेंगे। निम्न प्रबंधन पद्धतियो के द्वारा बीज फलोद्यान से अधिकतम मात्रा में अच्छी गुणवत्ता के बीज प्राप्त कर सकते हैं।

वृक्षों के मध्य उचित अंतराल : बीज फलोद्यान क्षेत्रों में वृक्षों के मध्य उचित अंतराल रहना चाहिए जिससे कि उनका क्राउन पूर्णतः विकसित हो सके और उसे चारों तरफ से प्रकाश मिल सके। यह अधिक पुष्पन में सहायक होता है ।

मलबे/कट सामग्री को हटाना : जंगल की सतह पर जमा हुए सभी मलबे/कट सामग्री को हटाकर कीटों एवं अन्य संभावित बीमारियों के खतरों को कम किया जा सकता है।

निराई : उच्च उत्पादकता के लिए वृक्षों के नीचे उग रही खरपतवार को नियंत्रित किया जाना चाहिए। खरपतवार निकालने से पोषक तत्वों और नमी के लिए प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है।

निचली शाखाओं की छंटाई : सागौन में अच्छी स्व–अलगाव

की क्षमता होती है। हालांकि, कई बार निचली शाखाओं के बढ़ने के कारण क्राउन समान रूप से विकसित नहीं हो पाता है। ऐसे मामलों में सतह से लगभग एक चौथाई ऊंचाई तक की निचली शाखाओं को काट देना चाहिए इससे क्राउन अच्छी तरह से विकसित होगा।

मृदा और नमी संरक्षण : मृदा और नमी के संरक्षण के लिए आवश्यक उपाय किए जाने चाहिए। ढलान वाले क्षेत्रों में 5 मीटर तिरछी दूरी पर एक फीट चौड़ाई और गहराई के साथ लगभग एक से दो मीटर लंबाई में छोटी–छोटी खाई खोदना लाभदायक होता है। खोदी गयी मिट्टी को नीचे की तरफ ढलान पर रखना चाहिए।

वृक्षों के चारों ओर रूट प्रूनिंग और सब–सोइलिंग : वृक्षों के तनों से लगभग 2 मीटर की परिधि में चारों ओर सब–सोइलिंग के साथ रूट प्रूनिंग बीज उत्पादन बढ़ाने में सहायक होती है। लगभग एक फीट गहराई की मिट्टी खोदने से छोटी और परिधीय जड़ों की छंटाई हो जाती है। इस प्रक्रिया को नई कलिकाओं के उभरने से पूर्व यानी मार्च–अप्रैल तक पूरा करने की आवश्यकता है। कम बीज उत्पादकता वाले क्षेत्रों में यह प्रक्रिया बीज उत्पादन को बढ़ाती है। इस प्रक्रिया को प्रत्येक दो वर्ष में दोहराया जा सकता है। पर्याप्त अंतराल में लगाए गए फलोद्यानों के मामले में, पंक्तियों के बीच में जुताई के द्वारा इस प्रक्रिया को किया जा सकता है।

उर्वरक संशोधन : उर्वरक वृक्षों की ताक़त बढ़ाता है, सघन क्राउन के विकास को सक्षम करता है जो अधिक पुष्पन करेगा। उर्वरक की मात्रा निर्धारित करने से पहले पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए मिट्टी की जाँच की जानी चाहिए। मध्य भारत में अधिकांश एस. पी. ए. और क्लोनल फलोद्यानों की मिट्टी में छएच्एज्ञ की कमी है। उर्वरक (N उर्वरक/500 ग्राम/वृक्ष, P उर्वरक/350 ग्राम/वृक्ष, K उर्वरक/120 ग्राम/वृक्ष) दो विभाजित खुराको में पहली, पुष्पन से लगभग 20–30 दिन पहले यानी मई के अंतिम सप्ताह/जून के प्रथम सप्ताह में और दूसरी, एक महीने के बाद यानी जुलाई के प्रथम सप्ताह में फल बनने से पहले वृक्ष के तने से लगभग 2 मीटर की परिधि में ट्रेंच बनाकर मृदा में मिलाने से रोटेशन उम्र के आधे से कम उम्र के वृक्षों में बीज उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है ।

मधुमक्खियों द्वारा परागण : परागण की कमी से बीज निर्धारण में कमी आती है और अपरिपक्व बीज वृक्ष से गिर जाते हैं। सागौन एवं अन्य वृक्ष प्रजातियों जिनमें मधुमक्खियों जैसे कीटों से भी परागण होता है, मधुमक्खी के छत्ते की स्थापना परागण की संभावना को बढ़ाने के लिए एक वैकल्पिक और सस्ती विधि के रूप में अपनायी जा सकती है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में मधुमक्खी के दो बक्से रखकर परागण और बीज उत्पादन में 15–20% की वृद्धि की जा सकती है। मधुमक्खियों के बक्से को मिट्टी की सतह से कम से कम 6–8 मीटर ऊपर वृक्षों की शाखा पर उपयुक्त और सुरक्षित रूप से रखा जाना चाहिए।

कीटों एवं बीमारियों के नियंत्रण के उपाय : वर्षा ऋतु (जून–अक्तूबर) में सागौन की पत्तियों पर स्क्लेटोनाइजर (Skletonizer) कीट के प्रकोप के जैविक नियंत्रण के लिए टी. एफ.आर.आई. ट्राईकोकार्ड का उपयोग किया जा सकता है। ट्राईकोकार्ड को टी.एफ.आर.आई., जबलपुर से प्राप्त किया जा सकता है। दीमक के नियंत्रण के लिए पहले वृक्ष के तने पर से मिट्टी की परत को हटाकर क्लोरोपायरीफोस 20 ई .सी./0.05% (2.5 मिली./लीटर पानी) चूने के घोल में मिलाकर तने पर 1.5 मीटर की ऊँचाई तक पेंट करना चाहिए। कीटनाशक घोल (क्लोरोपायरीफोस 20 ई .सी./0.05%) का प्रयोग वर्षा ऋतु के बाद वृक्ष के चारों तरफ कम गहरी खाई खोदकर भी किया जा सकता है ।

बीज का संग्रहण : परिपक्वता पर बीज एकत्र करना चाहिए जिससे अधिकतम अंकुरण हो सके। प्रत्येक क्षेत्र एवं क्लोन द्वारा प्राप्त बीज की पहचान बनाए रखने के लिए उचित लेबल का उपयोग करना चाहिए।

डॉ. प्रमोद कुमार
वैज्ञानिक

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

सैलिक्स के कीट एवं उनका प्रबंधन

पवन कुमार, वैज्ञानिक–ई, अखिल कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी, प्रियंका ठाकुर , परियोजना सहायक एवं आँचल वर्मा , कनिष्ठ परियोजना अध्येता
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

भूमिका:

विलो (सैलिक्स) हिमालय के ठंडे रेगिस्तानों में पाये जाने वाला वृक्ष है। इसका उपयोग चारे और ईंधन के रूप में किया जाता है। विलो समशीतोष्ण जलवायु के अनुकूल सबसे तेजी से बढ़ने वाले और उपयोगी वृक्षों में से एक है। इसकी खेती नदी के किनारे, नालों, सिंचाई, नहरों के आसपास की जाती है।

विलो वृक्ष उत्तरी गोलार्ध में विस्तृत है परंतु इसकी कुछ प्रजातियाँ दक्षिणी गोलार्ध में भी पाई जाती है। भारत मे इसकी लगभग 35 प्रजातियाँ पाई जाती है इनमें से 4 विदेशी प्रजातियाँ है। विलो की प्रमुख प्रजातियाँ सजावट के लिए और कुछ इमारती लकड़ी के लिए उगाई जाती है। विलो के वृक्ष लगभग 6–10 मीटर ऊँचे होते हैं। पिछले दशक के दौरान जलवायु में भारी बदलाव के कारण, विभिन्न कीटों में विविधता आ रही हैं जिनमे की विलो की छाल और लकड़ी में सुरंगे बनाने वाले कीट सबसे गंभीर होते हैं ये कीट, लकड़ी को लाभदायक उपयोग के लिए अनुपयुक्त कर देते हैं।

विलो के प्रमुख शत्रु कीट:

विलो को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों को चार समूहों में विभाजित किया गयाहै : छिद्रक किट (ठवतमत), पत्तियां खाने वाले किट (Defoliator), रस चूसने वालेकिट (Sap sucker) एवं गांठ बनाने वाले कीट (Gall forming insects)

***ट्यूबरोलैक्नस सैलिग्नस* (Tuberolachnussalignus): रस चूसने वाला कीट (Sap sucker):**

यह कीट काले रंग का होता है, और इनका शरीर बारीक बालो से ढका होता है जिसकी शरीर की लंबाई 5.0–5.8 मिमी होती है। यह जड़ और तना तंत्र के प्रत्यमान में कमी कर देता है जिससे वृक्ष की वृद्धि भी रुक जाती है।

चित्र: 01: *ट्यूबरोलैक्नस सैलिग्नस* (*Tuberolachnussalignua*)

***कैवरिएला एगोपोडी* (Cavariella aegopodii) रस चूसने वाला कीट (Sap sucker) :**

कैवरिएला एगोपोडीऐफिड गहरा हरा और काला रंग का होता है, यह ऐफिडविलो पेड़ के रस को चूसने से पेड़ो को नुकसान पहुंचाते हैं और पत्तियों को मोड़ देता है।

चित्र: 02: *कैवरिएला एगोपोडी* (***Cavariellaaegopodii***)

गांठ कीट (Gall insects): विलो के पत्तों पर हरे व लाल रंग की बेरी जैसे गाँठे बन जाती है। गांठ का आकार व रंग विभिन्न तरह का होता है। गांठ बनाने वाले कीट पत्तों पर अंडे देते है (सव फ़्लाइ, माइट, एफिड)। गांठ कीट पत्तों में ऐसे रसायन उत्सर्जन करती है जिसके द्वारा पत्तियों में ऊतक के निर्माण की शुरुआत होती हैं।

चित्र: 03: गांठ कीट (**Gall insecta**)

सेरुरा विनुला **(Ceruravinula) : पत्तियां खाने वाले (Defoliator) :**

इस पतंगे की सूँडीयों की पाँच उप अवस्थाएँ होती है। यह सुंडियां हरे रंग की होती है, यह विलो के पत्तों को खाती है, जिसके कारण विलो के वृक्षो की वृद्धि रुक जाती है।

चित्र: 04: *सेरुरा विनुला* **(Ceruravinula)**

प्लागियोडेरा वर्सिकलोरा **(*Plagioderaversicolora*): पत्तियां खाने वाले (Defoliator):**

यह कीट नीला या हरे रंग का होता है। इस कीट के ग्रब और वयस्क विलो के पत्तों को खाते है। इस के लार्वा पत्तियों के निचले हिस्से को खाकर कंकालित कर देते हैं।

चित्र: 05: *प्लागियोडेरा वर्सिकलोरा* **(*Plagiodera versicolor*)**

विलो के कीटो का नियंत्रण:

विलो के कीटों की रोकथाम के लिए विभिन्न प्रकार के जैव नियंत्रण जैसे कि गौ–मूत्र और साबुन वाले पानी का छिड़काव विलो की पत्तियों पर कर सकते है। लेडी बीटल के लार्वा, लेसविंग के लार्वा और सिरफिड फ्लाई के लार्वा विलो के शत्रु कीटो के परजीवी है। साथ ही इन कीटों के नियंत्रण के लिए नीम सीड केरनेल निस्सारित द्रव्य या दरेक सीड केरनेल निस्सारित द्रव्य का छिड़काव विलो की पत्तियों पर कर सकते है।

पवन कुमार
वैज्ञानिक–ई

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

सतत विकास में बाँस की भूमिका

पूजा शर्मा, वैज्ञानिक–बी
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

परिचयः

बाँस, पृथ्वी पर सबसे तेजी से बढ़ने वाले पौधों में से एक पोएसी लकड़ी की घास है। बाँस अपने विविध अनुप्रयोगों के कारण लोक प्रिय रूप से "जंगल का हरा सोना" के रूप में जाना जाता है। वुडीजाइलम और द्वितीयक वृद्धि की अनुपस्थितिए एक तने का खोखला अंतर नोडल क्षेत्र बिखरा हुआ संवहनी बंडल बाँस को मोनोकोट पौधे के रूप में दर्शाता है। दुनिया में बाँस की 75 पीढ़ी और 1250 प्रजातियां हैं, जिनमें से 23 जेनेरा और 75 प्रजातियां भारत में मौजूद हैं। भारत बाँस आनुवंशिक संसाधनों में चीन के बाद दूसरा सबसे अमीर देश है। बाँस एक प्रसिद्ध लकड़ी की घास है जो खाद्य स्रोत से लेकर भवन निर्माण सामग्री तक अपने बहुउद्देशीय उपयोगों के लिए वर्षों से लोकप्रिय है। अपने विशाल उपयोग के कारण बाँस में ग्रामीण व्यवस्था में सुधार करने की अपार क्षमता है और यह सतत विकास को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

वितरणः

बाँस पूरे भारत में व्यापक रूप से पाया जाता है, जिसमें अधिकतम भाग अरुणाचल प्रदेश का है जिसका क्षेत्रफल 16,083 वर्ग किमी है। और न्यूनतम हरियाणा में अर्थात 19 किमी वर्ग किमी है। बाँस विविधता तीन प्रमुख क्षेत्रों में शामिल हैः उष्णकटिबंधीय जंगलों में बाँस की 21 प्रजातियां, उपोष्णकटिबंधीय में 28 प्रजातियां वन, समशीतोष्ण वनों में 12 प्रजातियाँ, जबकि सबलपाइन वन में 6 प्रजातियाँ और अल्पाइन वनस्पति में 3 प्रजातियाँ हैं।

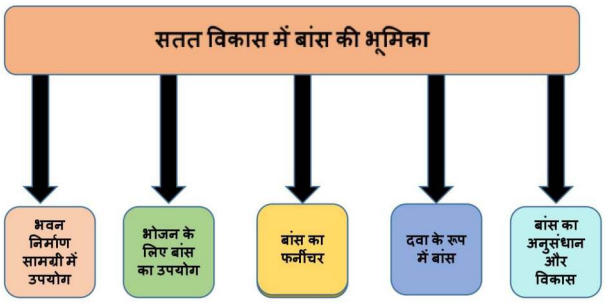

चित्रः 01

बाँस के उपयोग

बाँस एक बहुआयामी पौधा है जिसका उपयोग भवन निर्माण सामग्री के रूप में, फर्नीचर और सजावटी कला बनाने के लिए और दवाओं में भी किया जाता है। बाँस के कई उपयोग इसे लकड़ी का एक अच्छा विकल्प बनाते हैं, इसलिए इसे अक्सर "गरीब आदमी की लकड़ी" के रूप में जाना जाता है। भारत में इसे "ग्रीनगोल्ड" के नाम से जाना जाता है। बाँस का पौधा अपनी हर उम्र में उपयोगी होता है जैसे 30 दिन से कम का पौधा खाने के लिए उपयोगी होता हैए 6–9 महीने पुराने पौधे टोकरियाँ बनाने के लिए उपयुक्त होते हैं, 2 साल पुराने पौधे बाँस बोर्ड और लैमिनेटिंग के लिए उपयोग किए जाते हैं, 3–6 वर्ष पुराने संयंत्र भवन निर्माण के लिए सर्वोत्तम हैं।

भवन निर्माण सामग्री में उपयोगः

लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्यावरण के अनुकूल, कमलागत, टिकाऊ घर बनाने के लिए बाँस में काफी संभावनाएं हैं। निर्माण सामग्री के रूप में बाँस का उपयोग करने से स्टील की खपत कम हो जाती है और इसका उपयोग सीमेंट और पर्यावरण के अनुकूल घर बनाने के लिए योग्य विकल्प के रूप में किया जा सकता है।

भोजन के लिए बाँस का उपयोगः

भोजन के लिए बाँस के अपने तने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली कई भारतीय प्रजातियां ये बाँस के तने पश्चिमी दुनिया में केवल आयातित डिब्बा बंद उत्पादों के रूप में उपलब्ध हैं। परंपरागत रूप से, गैर–मानकीकृत, मौसमी क्षेत्र विशिष्ट, खपत पैटर्न अधिकांश देशों में देखा गया है। इसलिए खाद्य आधारित उद्योगों के लिए एक संगठित तरीके से बाँस को संसाधित करने के लिए एक बड़ा बाजार अवसर मौजूद है। बाँस का रस, बाँस की चाय और बाँस की बीयर कुछ ऐसे पेय पदार्थ हैं जो बाँस के पत्तों को संसाधित कर के बनाए जाते हैं, हालाँकि इनका उतना व्यवसायीकरण नहीं हुआ जितना कि बाँस के तनों का।

बाँस का फर्नीचरः

पिछले कुछ वर्षों में बाजार में बाँस के फर्नीचर की मांग बढ़ रही है। इस प्रकार के फर्नीचर में सौंदर्य की दृष्टि से डिजाइन और लागत प्रभावशीलता के मामले में काफी संभावनाएं हैं। बाँस से बने कई अच्छी तरह से डिज़ाइन किए गए और सुरुचिपूर्ण उत्पाद उपलब्ध हैं जैसे सोफा, कुर्सियां, टेबल, डाइनिंग टेबल, चारपाई। बाँस बोर्ड का उपयोग टेबलटॉप और स्कूल, कार्यालय और शोरूम फर्नीचर बनाने के लिए भी किया जाता है। हल्का वजन बाँस के फर्नीचर की एक अतिरिक्त विशेषता है। फर्नीचर के अलावा कई स्टाइलिश हस्तशिल्प जैसे लैंपशेड, स्टैंडिंग लैंप,

टोकरियाँ, शोपीस और सजावटी कोने भी लोगों का बहुत ध्यान आकर्षित करते हैं।

दवा के रूप में बाँस:

प्राचीनकाल से बाँस के अर्क का उपयोग पारंपरिक रूप से मानव बीमारी को ठीक करने के लिए किया जाता रहा है। बाँस का अर्क मधुमेह और कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित करने में उपयोगी होता है। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि बाँस के अर्क में सूजन–रोधी, एंटीऑक्सिडेंट और रोगाणुरोधी गतिविधि होती है। तबशीर (यातबशीर); बाँस सपारे, ये बाँस के अर्क हैं जिनका उपयोग बच्चों के बुखार संबंधी विकारों और मिर्गी के उपचार में किया जाता है। बाँस के विभिन्न शरीर रचना विज्ञान जैसे जड़ का जला हुआ पाउडर मसूड़ों से खून बहने और गठिया में अत्यधिक उपयोगी होता है, पत्ते में एंटीलेप्रोटिक, एंटीकोगुलेटर की प्रकृति होती है। लोफैटेरुमग्रासिल और काले बाँस के पत्ते मूत्र में रक्त के साथ मूत्र प्रतिधारण में उपयोगी होते हैं, जबकि प्लीब्लास्टुसमरू की पत्तियां फिडगेटिंग और फेफड़ों की सूजन के इलाज में उपयोगी होती हैं।

बाँस का अनुसंधान और विकास

बाजार में आर्थिक संभावनाएं होने के कारण बाँस को गुणवत्तापूर्ण शोध की जरूरत है। बड़े पैमाने पर गुणन, गुणवत्ता वाले बीज, बाँस के लिए जैव उर्वरक, बीजों की दीर्घकालिक व्यवहार्यता कुछ ऐसे शोध क्षेत्र हैं जिन पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। भारत की कई शोध प्रयोगशालाएं इसके संरक्षण के लिए बाँस टिशूकल्चर में लगी हुई हैं जिसमें ट्रॉपिकल बॉटनिकल गार्डन एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट में 48 प्रजातियां हैं जबकि केरल वन अनुसंधान संस्थान में 45 प्रजातियां हैं। वन अनुसंधान संस्थान में 35 प्रजातियां हैं। भारत सरकार ने बाँस विकास का मॉड्यूलर कोर्स शुरू किया है, जिसे रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय, श्रम और रोजगार मंत्रालय (डीजीईटी) द्वारा लोगों के बीच बाँस उत्पाद के कुशल विकास के लिए डिजाइन किया गया है।

पूजा शर्मा
वैज्ञानिक–बी

लेखकों के लिए नियम–निर्देश:

- वन अनुसंधान ई–पत्रिका के आगामी अंकों के प्रकाशन हेतु वानिकी से संबंधित अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं ई–मेल **hindiofficer@icfre.org** पते पर भेजने का कष्ट करें।
- रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।
- लेखों में शामिल छायाचित्र तथा आँकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए।
- वन अनुसंधान ई–पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा हिंदी अनुभाग उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।
- प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।

स–आभार
संपादक मंडल

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

समाज के हित की वानिकी : सामाजिक वानिकी

डॉ. प्रतिमा पटेल, वैज्ञानिक–ई
वन अनुसंधान संस्थान समविश्वविद्यालय, देहरादून

वन पृथ्वी का श्रृंगार और जीवन का आधार हैं। प्रकृति को सुरक्षित, संचालित एवं गतिशील बनाये रखने में वनों का अधारभूत योगदान है। वन धरती पर प्राण वायु को शुद्ध करने की जिम्मेदारी भी निभाते हैं। गत अनेक शताब्दियों में मानवीय जनसंख्या के प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव के परिणामस्वरूप वनों का तेजी से विनाश हुआ है। वर्तमान में भूपटल के लगभग 16 प्रतिशत भाग पर ही वन शेष रह गये हैं। विश्व के विभिन्न भागों में वनों का तेजी से होता सफाया धरती पर मानव जाति सहित सम्पूर्ण जीवन के लिए एक बड़ा खतरा बन कर मंडराने लगा है। वन–विनाश की विभीषिका से हुई हानि की कुछ सीमा तक भरपाई के लिए सामाजिक वानिकी को अपनाया गया है। रोजगार बढ़ाने एवं निर्धनता दूर करने में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है। वास्तव में, वन ऐसे प्राकृतिक साधन है, जिसका मानवीय सहयोग से कुछ सीमा तक नवीनीकरण किया जाना संभव है। भारत में सामाजिक वानिकी (Social forestry in india) से ग्राम वासियों के साथ–साथ नगर वासियों को भी समुचित लाभ होता है तथा उनकी वन्य आवश्यकता जैसे– फर्नीचर, माचिस उद्योग, पेपर उद्योग एवं अन्य लघु उद्योग के लिए लकड़ी की नियंत्रित पूर्ति होती है। अतः इससे स्पष्ट है कि वनों से बाहर सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया गया वनीकरण, सामाजिक लाभ के लिए है।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि समाज की पर्यावरण और संसाधन संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए वनों का विकास किया जाता है, तो उसे ही "सामाजिक वानिकी (Social Forestry) कहा जाता है। पर्यावरणीय दृष्टि से किसी भी देश या राज्य में कम से कम 33% भू–भाग में वन का विस्तार होना चाहिये। भारत में सबसे अधिक वन प्रतिशत वाला राज्य मिजोरम (91.27%) है। जबकि भारत में सबसे अधिक वन क्षेत्र वाला राज्य मध्यप्रदेश (77.7 वर्ग किमी) है। सामाजिक वानिकी का प्रमुख अर्थ है "लोगों का, लोगो के लिए, लोगों द्वारा चलाया गया वानिकी कार्यक्रम" सामाजिक वानिकी से अर्थ खाली पड़े बंजर जमीनों पर फलदार वृक्ष लगाने से भी हैं जिससे पर्यावरण की सुरक्षा के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की वृद्धि हो। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने 1976 में ईंधन, चारा लकड़ी और छोटे–मोटे वन उत्पादों की पूर्ति करने वाले पेड़ लगाने के कार्यक्रम को सामाजिक वानिकी के नाम से परिभाषित किया था। सामाजिक वानिकी सरकार एवं जनता की सहभागिता से देश की हरियाली में अभिवृद्धि करने का एक महत्वपूर्ण वानिकी कार्यक्रम है इसके अंतर्गत वन विभाग एवं जनता के सहयोग से वनावरण में वृद्धि, ग्रामीणों को जलाऊ लकड़ी, चारा और घरेलू उपयोग हेतु लकड़ी की आपूर्ती, बेकार भूमि पर वृक्षारोपण, सुरक्षित वनों पर दबाव कम करना और ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरणीय दशाओं में सुधार आदि के कार्यक्रम शामिल है।

सामाजिक वानिकी का तात्पर्य पर्यावरणीय, सामाजिक और ग्रामीण विकास में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से वनों का संरक्षण एवं प्रबंधन तथा ऊसर भूमि पर वनीकरण से हैं। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने सामाजिक वानिकी को तीन श्रेणियों में वर्गीकत किया है:

- **शहरी वानिकी**– इसके अंतर्गत शहरों और उसके निकट निजी व सार्वजनिक भूमि जैसे– पार्कों, सड़कों के किनारे, औद्योगिक व व्यापारिक स्थलों पर वृक्षारोपण एवं उनका प्रबंधन शामिल किया जाता है तथा नगर के चारों ओर हरित पट्टी (Green Belt) का विकास करना हैं।
- **ग्रामीण वानिकी**– इसमें कृषि–वानिकी तथा सामुदायिक–वानिकी को बढ़ावा दिया जाता है।
- **कृषि वानिकी**–इसके अंतर्गत कृषि योग्य और बंजर भूमि पर वृक्ष एवं फसलों को एक साथ उगाया जाता है। वन विभाग द्वारा मुफ्त या कम दाम पर पौधे वितरित कर किसानों को मेड़ वानिकी तथा फार्म वानिकी के लिए प्रोत्साहित करना भी है।
- **सामुदायिक वानिकी**– इसके अंतर्गत वन विभाग द्वारा जन सहयोग से सार्वजनिक अथवा सामुदायिक भूमि जैसे गाँव चारागाह, मंदिर भूमि, सड़कों के किनारे, रेलवे लाइन के किनारे पट्टी के रूप में तथा विद्यालयों इत्यादि में वृक्षारोपण करना सम्मिलित है।
- **फार्म वानिकी**– कृषि खेतों की मेड़ों या सीमाओं पर वृक्षों की पंक्तियाँ तथा खेतों में बिखरे हुए कुछ वृक्षों को लगाने के रूप में किये जा रहे प्रयोग को फार्म वानिकी के कहते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य छोटे आकार की लकड़ी, ईंधन तथा चारे की आवश्यकता पूरी करना तथा कृषि पर अनुकूल प्रभाव डालना है। इसमें किसानों द्वारा अपनी कृषि भूमि पर वाणिज्यिक एवं गैर–वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए वृक्ष लगाए जाते है।

समाजिक वानिकी के उद्देश्य

- भूमि संरक्षण में सहायता करना तथा मिट्टी की उर्वरता को

नष्ट होने से रोकना।

- जलाऊ लकड़ी उपलब्ध कराना ताकि गोबर का प्रयोग खाद के रूप में ही हो सके।
- इमारती लकड़ी की प्राप्ति।
- जानवरों को हरा चारा उपलब्ध कराना जिससे दुग्ध उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्तन हो।
- फलों की उपज में वृद्धि करके देश के खाद्य संसाधनों की बढ़ोत्तरी में योगदान देना।
- खेतों की उर्वरता बढ़ाने के लिए उनके चारों ओर वृक्ष के रूप में बाड़ लगाना।
- जनता में वृक्षों के प्रति प्रेम एवं चेतना प्रदान करना।
- बेरोजगारी की समस्या को दूर करना।
- ग्रामीण कुटीर एवं लघु उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराना।
- मरूस्थलीय विकास को रोकना एवं बाढ़ तथा मृदा अपरदन पर नियंत्रण करना।
- वृक्षारोपण द्वारा भूमिगत जल में वृद्धि तथा पारिस्थितिकी संतुलन को बढ़ावा देना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में मनोरंजन की सुविधाओं का विस्तार करना।

चित्रः01 कृषि क्षेत्र में कृषि वानिकी का विकास

सामाजिक आर्थिक महत्वः

- यह किसानों को आय का अतिरिक्त स्रोत प्रदान करेगा और ग्रामीण क्षेत्रों में अजीविका के अवसरों में वृद्धि करती हैं।
- सामुदायिक वानिकी भूमिहीन वर्गों के लोगों को वृक्षारोपण में संलग्न करके उनके हितों को बढ़ावा देती हैं तथा इस प्रकार उन्हें उन लाभों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है अन्यथा यह भूस्वामियों तक ही सीमित रहता हैं।
- इसके अतिरिक्त, व्यावसायिक उद्देश्यों हेतु वृक्षारोपण से किसानों के लिए भोजन, चारा, ईंधन, लकड़ी व फल इत्यादि की पूर्ति करती है।
- इसके मनोरंजक गतिविधियों तथा सुख–सुविधाओं के महत्व में वृद्धि होगी या ग्रामीण जीवन के अनुरक्षण के संदर्भ में लाभ प्राप्त होगा।
- यह लोगों को वनों के साथ सद्भावनापूर्वक निवास करने और कृषि वानिकी को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है तथा इस प्रकार, हमें जलवायु परिवर्तन का सामना करने में सक्षम बनाती है।
- यह स्थान के वातावरण को संतुलित करके लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करती हैं। उदाहरण के लिए, शहरी वानिकी ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में सहायता प्रदान करती है।

सामाजिक वानिकी की समस्याएँः

- इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी समस्या धन की कमी और जनता की सफल सहभागिता की कमी।
- एन. जी. ओ. एवं व्यक्तिगत प्रयासों में कमी।
- लोगों की तात्कालिक लाभ प्राप्त करने की मानसिकता। वृक्षारोपण के पश्चात देखभाल की कमी एवं भूमिहीन कृषकों की साझेदारी का अभाव।
- सरकारी विभागों द्वारा पेड़ लगाने के बाद उन्हे जीवित रखने की राज्यों द्वारा जिम्मेदारी का निर्वाह न करना।

चित्रः02 वनों पर लकड़ी और प्राकृतिक संसाधनों के जैविक दबाव को रोकने के लिए फार्म वानिकी

सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित करने के उपायः

- प्रबंध तकनीकी में प्रशिक्षण तथा किसानों को बीज और पौधे उपलब्ध कराये।
- आग और पशुचारण से वनों की सुरक्षा के बारे में लोगों को जानकारी दे।

वाले पशुओं के स्थान पर जर्सी गाय आदि को पालें जो कम चारा खाती है।

- वन महोत्सव एवं वृक्षारोपण दिवस जैसे कार्यक्रमों से लोगों में चेतना जगायें।
- कृषकों को कृषि के साथ बागवानी के लिए प्रोत्साहित करें।
- लोगों को इस बात के लिए जागृत करना कि बार–बार काम आने वाले और नष्ट न होने वाले पौधों का ही प्रयोग ईंधन के रूप में करे और लगाये।
- जलवायु अनुकूल पौंधों का विकास किया जाये।

निष्कर्ष:

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में कई तरह समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकती है। क्योंकि इस कार्यक्रम के तहत एक ही खेत से खाद्यान्न उत्पादन के साथ इमारती लकड़ी और फलों का भी उत्पादन किया जा सकता है। वहीं जलवायु परिवर्तन, जैसी वर्तमान वैश्विक समस्या से सबसे अधिक ग्रामीण जनजीवन एवं गरीब तबके के लोग ही प्रभावित हो रहे हैं तो इनके दुष्प्रभावों को कम करने में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण उपकरण साबित हो सकती है। सामाजिक वानिकी के द्वारा मेंढ़ों पर या नदी तटबंधों पर वृक्षारोपण कर मृदा कटाव जैसे समस्याओं को भी काबू कर सकते हैं यह जल संरक्षण एवं मृदा की उर्वरता को बढ़ाने वाले प्राकृतिक कारक भी हैं। इस कार्यक्रम के जरिये ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या पर भी काफी हद तक काबू पाया जा सकता है।

अतः सामाजिक वानिकी कार्यक्रम को सामाजिक दायित्व के रूप में लेना होगा तथा इसे सामाजिक शिक्षा व तकनीकी प्रशिक्षण की अनिवार्यता पर अधिक बल देना होगा यद्यपि देश के सभी हिस्सों में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम चालू करने के लिए कृषि मंत्रालय ने एक बड़ी योजना बनाई है फिर भी इसका लाभ वंचित लोगों को नही मिल सका।

प्रशासनिक प्रतिबद्धता के साथ–साथ जन सहयोग हेतु मीडिया तथा गैर सरकारी संस्था का भी सहयोग लिया जाये। समस्त कृषि योजनाये चल रही है फिर भी कृषि क्षेत्र का विकास न होना एक गंभीर चिंता का विषय है। ग्रामीण विकास की योजनाओं का लाभ ग्रामीणों तक पहुँचाने के लिए राजनीतिज्ञों व प्रशासनिक अधिकारियों को जिम्मेदारी लेनी पड़ेंगी। जब तक ग्रामीण विकास नहीं होगा, द्वितीय हरित क्रांति पर भी प्रश्न चिन्ह उठेगा। हमारे पास समस्त संसाधन मौजूद है, विश्व की सबसे अधिक उपजाऊ भूमि उपलबध है। इसलिए द्वितीय हरित क्रांति की सफलता बहुत हद तक आम जनता, प्रशासन, और किसानों की जागरूक व ईमानदार भागीदारी पर निर्भर करेगी।

डॉ. प्रतिमा पटेल
वैज्ञानिक–ई

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

लवणीय भूमि के सुधार में हेलोफाइट्स का महत्व

डॉ. अदिति टेलर, वैज्ञानिक–बी एवं डॉ. अंजलि जोशी, वैज्ञानिक–बी
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर, राजस्थान

भूमि का लवणीकरण दुनिया के कई हिस्सों में प्रमुख समस्याओं में से एक है, जिसके कारण भूमि का क्षरण होता है और खाद्य उत्पादन बुरी तरह से प्रभावित होता है। इसने कई देशों में भूमि के बड़े हिस्से को अनुत्पादक और खेती के लिए अनुपयुक्त बना दिया है। भारत में लगभग 2.956 मिलियन हेक्टेयर (mha) क्षेत्र नमक–प्रभावित है। नमक–प्रभावित क्षेत्र में हर साल 10% की वृद्धि दर्ज़ की जाती है, और यह अनुमान है कि वर्ष 2050 तक देश में लगभग 50% कृषि योग्य भूमि नमक से प्रभावित हो जाएगी, जिसके कारण पौधे की वृद्धि के लिए अनुकूल भूमि कम हो जाएगी और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा और आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। देश में कुल लवणीय भूमि में से 75% पांच राज्यों, गुजरात (2.23 mha), उत्तरप्रदेश (1. 37 mha), महाराष्ट्र (0.61 mha), पश्चिम बंगाल (0.44 mha), और राजस्थान (0.38 mha) में पाई जाती है। ऐसा अनुमान है कि भारत को लगभग रु. 230.20 अरब सालाना नुकसान 16.84 मिलियन टन फसलों की क्षति के रूप में होता है।

मिट्टी का लवणीकरण प्राकृतिक और मानव जनित दोनों कारणों से होता है। भारत में, प्राकृतिक प्रक्रियाओं और मानवजनित प्रथाओं की वजह से बड़े क्षेत्र लवणीय भूमि में बदल गये हैं। ये तटीय (पूर्वी और पश्चिमी तट पर अनियमित रूप से वितरित) और अंतर्देशीय प्रांतों में विभाजित है, जिनका अधिकतम हिस्सा क्रमशः गुजरात और राजस्थान राज्यों में पाया जाता है। लवणीकरण के प्राकृतिक कारणों में चट्टानों का अपक्षय और तट के साथ समुद्री जल का अंतर्ग्रहण शामिल है, जिससे तटीय क्षेत्रों में नमक की मात्रा में वृद्धि होती है। शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से गर्म और शुष्क परिस्थितियों और पानी की आपूर्ति की कमी के साथ उच्च वाष्पीकरण दर के कारण मिट्टी में लवण की मात्रा अधिक होती है क्योंकि अतिरिक्त लवण बाहर नहीं निकल पाता है। सिंचाई के लिए खारे पानी के उपयोग जैसी मानवजनित प्रथाओं ने देश की लगभग 17% सिंचित भूमि को द्वितीयक लवणता के अधीन कर दिया है। भू जल का अत्यधिक निष्कर्षण, कृषि में रसायनों का अत्यधिक उपयोग और औद्योगिक अपशिष्ट मिट्टी के लवणीकरण के अन्य प्रमुख स्रोत हैं। इसके अलावा, कई शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्र में सिंचाई के लिए नहरों के प्रयोग के कारण भूमि के बड़े भाग जल–जमाव और बाद में माध्यमिक लवणता के कारण अनुत्पादक हो गए हैं। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य के तहत लवणीकरण की समस्या अधिक प्रतिकूल होने जा रही है। समुद्र के स्तर में वृद्धि होने की उम्मीद है, जिसका तटीय क्षेत्रों पर तत्काल प्रभाव पड़ेगा। 'ग्लोबलवार्मिंग'के कारण तापमान में वृद्धि से शुष्क क्षेत्रों में पानी की कमी बढ़ने की संभावना है जिससे उच्चवाष्पीकरण और लवण का संचय बढ़ जायेगा।

लवणीय मिट्टी को >4 dS-m–1 (~40 mM NaCl) के EC के साथ कैल्शियम, मैग्नीशियम और सोडियम (Na से अधिक Ca और Mg) की प्रधानता के साथ चित्रित किया जाता है। इस मिट्टी का सोडियम ऐड सोरप्शन अनुपात (SAR) <13 और विनिमेय सोडियम प्रतिशत (ESP) <15 (कुल CEC का) और पीएच <8.5 होता है। लवणीय मिट्टी सतह पर लवणों की सफेद पपड़ी बनने के कारण सफेद दिखाई देती है, लेकिन इसमें पानी और हवा के लिए अच्छी पारगम्यता होती है। लवणीय मिट्टी में उपस्थित उच्च नमक सांद्रता पौधों के विकास के सभी पहलुओं जैसे अंकुरण, वनस्पति विकास और प्रजनन विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, जिससे पौधों का विकास रुक जाता है और अंततः उनकी मृत्यु हो जाती है। लवणीय वातावरण में उगने वाले पौधे दो प्रकार के तनाव का अनुभव करते हैं, औसमॉटिक तनाव और आयनिक तनाव। औसमॉटिक तनाव लवणीय मिट्टी में कम औसमॉटिक क्षमता के विकास के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है जो पौधों द्वारा जल अवशोषण को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। दूसरी ओर, आयनिक तनाव, N+और Cl–के अत्यधिक संचय के कारण उत्पन्न हुए विषाक्तता और पोषण की कमी (N, Ca, K, P, Fe, Zn) दोनों को समाहित करता है। बढ़ा हुआ N+ अवशोषण पौधों द्वारा K+ अवशोषण को कम करता है जबकि बढ़ी हुई मिट्टी की लवणता Ca आयनों के साथ फॉस्फेट आयनों के प्रेसीपीटेशन को बढ़ाती है जिस कारण फॉस्फेट आयनों की उपलब्धता काफी कम हो जाती है। पोषण असंतुलन कई चयापचय प्रक्रियाओं और इसमें शामिल एंजाइमों जैसे प्रकाश संश्लेषण और प्रोटीन संश्लेषण को हानिकारक रूप से प्रभावित करता है। इसके अलावा क्लोरोफिल मात्रा, स्टोमेटल कनडकटेंस और गैस विनिमय भी प्रभावित होते हैं। एक अप्रधान प्रभाव के रूप में लवणता, प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) के अति उत्पादन की ओर ले जाती है जो विभिन्न सेलुलर कमपार्टमेन्ट्स में ऑक्सीडेटिव क्षति का कारण बनती है।

लवणता और जलभराव की समस्या को दूर करने के लिए आमतौर पर रासायनिक या यांत्रिक उपचार का उपयोग किया जाता है। कई तकनीकी आविष्कारों का परीक्षण किया गया है, जिसमें तालाब के ताजे पानी के साथ नमक का रिसाव, उप–सतह जल निकासी, दो सिंचाई के बीच और परती अवधि के दौरान मल्चिंग और सिंचाई प्रबंधन प्रभावी पाया गया है। उदाहरण के लिए, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और कर्नाटक राज्यों में उप सतह जल निकासी तकनीक को सफलतापूर्वक अपनाया गया है और

परिणाम स्वरूप लगभग 110,000 हैक्टेयर जल भराव से ग्रसित लवणीय भूमि को बहाल किया गया है। हालांकि, ऐसी तकनीकों का उपयोग करना बहुत महंगा और श्रमसाध्य है। लवणीय और लवणीय–जल भराव वाली मिट्टी के सुधार का एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक तरीका पादप उपचार या 'फाइटोरेमेडिएशन' नामक प्रक्रिया द्वारा वनरोपण और कृषि वानिकी प्रथाओं के माध्यम से संभव है। लवणीय मिट्टी का फाइटोरेमेडिएशन एक लागत प्रभावी और पर्यावरण के अनुकूल तरीका है जिसमें पौधों (पेड़ों, झाड़ियों और घास) को उगाकर मिट्टी से अतिरिक्त लवण को हटाया जा सकता है। इस तरह के सुधार और जैव–जल निकासी कार्यक्रमों के लिए उपयोग की जाने वाली कुछ प्रजातियों में *प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा, अकेशिया निलोटिका, केशुराइना* प्रजाति *टैमेरिक्स आर्टिकुलेट, यूकेलिप्टस टेरेटिकॉर्निस और पार्किंसोनिया एक्यूलेट* शामिल हैं।

नमक–सहिष्णु प्रजातियों में से जो *फाइटोरेमेडिएशन* के लिए सबसे उपयुक्त हैं, उन्हें 'हेलोफाइट्स' के रूप में जाना जाता है। हेलोफाइट्स ऐसे पौधे हैं, जिनमें दुनिया के केवल <2% वनस्पति शामिल हैं, जो विभिन्न स्तर तक लवणता को सहने की क्षमता रखते हैं। हेलोफाइट्स को विभिन्न पहलुओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। पारिस्थितिक पहलू के आधार पर, उन्हें ओब्लिगेट हेलोफाइट्स, फेकलटेटिव (वैकल्पिक) हेलोफाइट्स और हैबिटैट (पर्यावास)–इनडिफ्रेंट हेलोफाइट्स के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। ओब्लिगेट हेलोफाइट वे होते हैं जिन्हें अपनी वृद्धि के लिए लगातार नमक की आवश्यकता होती है, जबकि वैकल्पिक हेलोफाइट वे होते हैं जो नमक रहित मिट्टी पर भी विकसित होने में सक्षम होते हैं। हैबिटैट–इनडिफ्रेंट हेलोफाइट्स वे हैं जो आमतौर पर नमक रहित मिट्टी में रहना पसंद करते हैं, लेकिन लवणीय परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता रखते हैं और संवेदनशील प्रजातियों की तुलना में बेहतर विकसित हो सकते हैं। तटीय नमक घाटियों के जल भराव वाले क्षेत्रों में पाए जाने वाले 'मैंग्रोव' भी हेलोफाइट्स के उदाहरण हैं। वैकल्पिक रूप से, हेलोफाइट्स को नमक–धीरज तंत्र के आधार पर साल्ट–एक्सक्लूडर्स (नमक–बहिष्करणकर्ताओं; उदाहरण के लिए, *राइज़ोफोरामैंगल, राइज़ोफोरम्यूक्रोनेट* और *ब्रुगुएराजिम्नोरिज़ा*), साल्ट–एक्सक्रेटर्स (नमक–उत्सर्जक या रेक्रेटो हालोफाइट्स) उदाहरण के लिए, टैमेरिक्स और एविसेनिया की प्रजातियां) और साल्ट–एक्युमुलेटर्स (नमक–संचयक; उदाहरण के लिए, *एट्रीप्लेक्स, सैलिकोर्निया, सेसुवियम* और सुएडा की कुछ प्रजातियां) में वर्गीकृत किया जाता है। पहले दो तंत्र नमक से बचाव के उदाहरण हैं, जबकि तीसरा नमक सहनशीलता का है। नमक–बहिष्करण करने वालों के पास जहरीले आयनों को बाहर करने के लिए एक 'अल्ट्राफिल्ट्रेशन' तंत्र होती है। मैंग्रोव वनस्पतियां इस प्रकार की सहनशीलता दर्शाती हैं और वे प्ररोह विभज्योतक ऊतक में आयनों को बाहर निकालने और कम N+/K+ अनुपात बनाए रखने में भी सक्षम हैं। नमक–उत्सर्जक (यारेक्रेटो हेलोफाइट्स) के पास अवशोषित नमक को सक्रिय रूप से बाहर निकालने के लिए विशेष अंग होते हैं। *साल्टग्लांड्सग्लैंड्सया* नमक ग्रंथियां नामक ये संरचनायें पत्तियों पर मौजूद होती हैं और उनके आंतरिक ऊतकों से नमक का स्राव करती हैं, जो पत्ती की सतह पर बड़ी मात्रा में क्रिस्टलीकृत नमक के रूप में जमा होता है। नमक–संचय कयासाल्ट–एक्युमुलेटर्स उच्च स्तर की 'सक्युलेन्स' (मोटीपत्तियां, छोटे सतह क्षेत्र, धँसेस्टोमेटा, बड़े स्पंजी में सोफिल और बहुपरत तालुऊतक) प्रदर्शित करते हैं और अतिरिक्त लवणों के विभाजन के कारण अपने ऊतकों में नमक के उच्च स्तर को बनाए रखने में सक्षम होते हैं।

हेलोफाइट्स कुछ अद्वितीय अनुकूली विशेषताओं को विकसित करने के लिए विकसित हुए हैं जो उन्हें अत्यधिक लवणयुक्त वातावरण में भी पनपने में सक्षम हैं। वे विभिन्न मॉर्फोलॉजिकल (रूपात्मक) तथा सेलुलर (कोशीय) व्यवहार के माध्यम से उच्च नमक सांद्रता को सहन करते हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, नमक सहनशक्ति के लिए प्राथमिक रूपतामक विशेषताएं और व्यवहार रसीलापन (सक्युलेन्स), बहिष्करण और उत्सर्जन हैं। सेलुलर स्तर पर काम करने वाले तंत्र फिजियोलॉजिकल (शारीरिक) यामॉलिक्यूलर (आणविक) हो सकते हैं। इनमें प्रकाश संश्लेषण और वाष्पोत्सर्जन की दर में संशोधन, अधिक N+ का कंपार्टमेंट लाइज़ेशन या कोशिका के बाहर बहिष्करण, ऑस्मोलाइट्स (प्रोलीन, घुलनशील कार्बोहाइड्रेट, अमीनोएसिड्स और ग्लाइसिनबीटेन) द्वारा ऑस्मोटिक समायोजन, कुशल एंटीऑक्सिडेंट प्रतिक्रिया का संचय और सक्रियण शामिल हैं। इसके अलावा, वे प्लांट हार्मोन एब्सिसिक एसिड (एबीए) के स्तर में भी वृद्धि प्रदर्शित करते हैं जो प्रकाश संश्लेषण और विकास पर NaCl के निरोधात्मक प्रभाव को कम करने में मदद करता है।

भारत में, अधिकांश हेलोफाइट्स '*चीनोपोडिएसी*' और 'पोएसी' परिवारों से संबंधित हैं। इनमें *ऐलुरोपस लैगोपोइड्स, स्पोरोबोल सहेल्चोलस, क्लोरीसविरगाटा, क्रेसाक्रेटिका, टैमेरिक्सडियो का, टैमेरिक्सएरिकोइड्स और टैमेरिक्सट्रौपी* जैसे गैर–रसीले हेलोफाइट्स शामिल हैं, जिनमें उत्सर्जित करने के लिए नमक उत्सर्जक ग्रंथियां होती हैं। अन्य हेलोफाइट्स उच्च सक्युलेन्स प्रदर्शित करते हैं, जैसे कि *हेलोज़ाय लोनरिकर्वम, हेलोज़ायलोन सैलिकोर्निकम, पोर्टुला का ओलेरैसिया, साल्सोलाबैरियोस्मा, सेसुवियम से सुवियोइड्स, सुएडाफ्रूटिकोसा, ट्रिएन्थेमा ट्राइक्वेट्रा, और ज़ायगोफिलमसिम्प्लेक्स*। भारत में गुजरात और राजस्थान में पायी जाने वाली प्रमुख हेलोफाइट्स प्रजातियों में सुएडा (चार), *स्पोरोबोलस, टैमेरिक्स*, और *एविसेनिया* (प्रत्येक में तीन), *हेलोज़ायलोन, सेसुवियम, सैलिकोर्निया, ट्रिएन्थेमा*, और *साल्सोला* (प्रत्येक में दो), *और एलुरोपस, एट्रिप्लेक्स और राइज़ोफोरा* (प्रत्येक में केवल एक) शामिल हैं।

कुछ ऐसे सफल उदाहरण हैं जिनमें लवणीय भूमि पर हेलोफाइट को उगाने के परिणामस्वरूप नमक संदूषण में कमी

आई है और मिट्टी में सुधार हुआ है। उदाहरण के लिए, एक अध्ययन में सक्यूलेन्ट हेलोफाइट सुएडाफ्रूटि कोसा अपने अपने भूम्युपरी भागों में नमक एकत्रित करने और 1 एकड़ ज़मीन से 1088.6 किलोग्राम से अधिक नमक केवल एक ही फसल में निकालने में सक्षम पाया गया। *सुएडामेरिटीमा* और *सेसुवियमपोर्ट्युलॉसेस्ट्रम* चार महीनों में 504 kg NaCl-h–1 और चीनोपोडियम एल्बम लगभग 570 NaCl-h–1 नमक जमा कर सकता है और मिट्टी में लवण की मात्रा में कमी लाने में प्रयोग किया जा सकता है। भारत में हेलोफाइट्स जैसे ऐलुरोपस लैगोपोइड्स, *स्पोरोबोलसहेल्वोलस* और *फ्रेगमाईटज़* प्रजाति का उपयोग लवणीय क्षेत्रों के पुनर्वास के लिए आशाजनक उम्मीदवारों के रूप में किया गया है।

मिट्टी के अलवणीकरण में उपयोग के अलावा, हेलोफाइट्स में अक्षय ऊर्जा के लिए बायोएनेर्जी स्रोत, जलवायु परिवर्तन शमन, CO_2 सेक्वेस्ट्रेशन क्षमता जैसे कई अन्य उद्देश्यों के लिए उपयोग करने की काफी संभावनाएं हैं और प्रदूषित मिट्टी के जैविक सुधार (बायो–रेमेडिएशन) के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है। हेलोफाइट्स का उपयोग भोजन और चारे के रूप में भी किया जाता है। पारंपरिक चिकित्सा में भी इनका उपयोग नियोजित है और कुछ फाइटोकेमिकल्स निकालने के लिए भी इनका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार से हेलोफाइट्स आर्थिक रूप से लाभदायक होते हैं और इन लवणीय भूमि के गरीब और संसाधन–रहित निवासियों के लिए आजीविका का स्रोत होते हैं। हेलोफाइट्स, जैसे *किक्रेसाक्रेटिका, हेलोज़ायलोनस्टॉकसी, सल्वाडोरापर्सिका* और *सुएडाफ्रूटिकोसा,* का उपयोग पौष्टिक अनाज और तेल के स्रोत के रूप में किया जाता है। *सैलिकोर्नियायूरोपिया* उच्च गुणवत्ता वाला खाद्य तेल प्रदान करता है जबकि *साल्वाडोराओलियोइड्स* और *साल्वाडोरापर्सि* से प्राप्त तेल साबुन बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। अन्य प्रजातियाँ, जिनमें एट्रिप्लेक्स, जंकस, *हेलोज़ायलोन, सैलिकोर्निया,* सुएडा, *स्पोरोबोलस, ट्रिएनथेमा* और *ज़ायगोफिलम* शामिल हैं, का उपयोग थार रेगिस्तान और कच्छ के रन में मवेशियों के चारे के रूप में किया जाता है। देश के विभिन्न हिस्सों में मूलनिवासियों द्वारा *हेलोज़ायलोनसैलिकोर्निकम, पोर्टुलाकाओलेरेसिया, सुएदान्यूडिफ्लोरा, सुएडामेरिटिमा, ट्रिएन्थेमापोर्ट्युलॉ सेस्ट्रम के युवा पत्ते (याफाइलोक्लेड्स)* और कोमल अंकुरों को सब्जी, अचार और सलाद के रूप में पकाया और खाया जाता है। "साजी" (स्थानीय राजस्थानी में) *हेलोज़ायलोन, सुएदाफ्रुटिकोसा* और *साल्सोलाबैरियोस्मा* जैसे चीनोपॉड की हवा में सुखाई गई पर्ण सामग्री से प्राप्त सोडा ऐश है, और यह पापड़ का आवश्यक *घटक है। हेलोफाइटिक प्रजातियों (फ्रेगमाईटज़कार का, जंकसरिजिडेस, जंकसमेरिटिमस और सुएदामेरिटिमा)* उच्च सेल्युलोसिक सामग्री के साथ गुणवत्ता वाले लुगदी का उत्पादन करते हैं और कागज बनाने के लिए देश के पश्चिमी भाग में प्रयोग में लिए जा रहे हैं। हेलोफाइट्स में अपार औषधीय गुण भी होते हैं और पारंपरिक चिकित्सा में इसका उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, *साल्वाडोरापर्सिका* की पत्तियों और फलों का उपयोग पित्त की परेशानी और गठिया में किया जाता है, *बोहेरवियाडिफ्यूसा* का उपयोग पेट और मूत्र संबंधी समस्याओं के लिए किया जाता है और *टैमेरिक्सट्रौपी* पेचिश के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है। संयोग से, हेलोफाइट् भारी धातुओं को सहन करने में भी सक्षम हैं और इस प्रकार भारी धातु–दूषित लवणीय मिट्टी के सुधार के लिए फायदेमंद हैं। ये फाइटोएक्ट्रीशन (जैसे टैमेरिक्स spp-) या फाइटोएक्स्ट्रेक्शन (जैसे, *एट्रीप्लेक्सहलीमस* और *सुएडाफ्रूटिकोसा)* के तंत्र द्वारा काम कर सकते हैं। *टैमेरिक्सरिमरनेंसिस* नमक के अलावा पत्ती की सतह पर बड़ी मात्रा में धातुओं का उत्सर्जन कर सकता है। कुछ प्रजातियां अपने भूम्युपरी हिस्सों या जड़ों में भारी धातुओं को जमा कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, लेप्टोक्लोआफ्यूस का उच्च दर (335 mg-g–1) से भूम्युपरी भागों में जिंक (Zn) का संचय करता है, जबकि *एट्रीप्लेक्स (एट्रीप्लेक्सहॉर्टेंसिस* (var-*परपूरया*), *एट्रीप्लेक्सहॉर्टेंसिस* (अंत. :cjk), और *एट्रीप्लेक्सरोज़िआ*) की प्रजातियां अपनी जड़ों में टहनियों से अधिक Cu, Pb, Ni, और Zn जमा करती हैं। कुछ हेलोफाइट्स, जैसे सैलिकोर्निया, सुएडा, एट्रिप्लेक्स, और दो मैंग्रोव प्रजातियां, *एविसेनियाबर्मिनन्स* और *राइज़ोफोरामैंगल* को एक व्यवहार्य वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन के रूप में देखा जा रहा है। इसके अलावा, चूंकि हेलोफाइट्स में आंतरिक नमक सहिष्णुता क्षमता होती है, इसलिए उन्हें ग्लाइकोफाइट्स के आनुवंशिक सुधार के लिए उम्मीदवार जीन के स्रोत के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इससे मिट्टी में उच्च लवणता का मुकाबला करने में सक्षम फसलों को विकसित की जा सकती हैं और जलवायु परिवर्तन के दौर में फसल उत्पादन में सतत वृद्धि हासिल करने में और वैश्विक खाद्य सुरक्षा हासिल करने में मदद मिलेगी।

डॉ. अदिति टेलर
वैज्ञानिक–बी

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

असमीया समाजः जीवन में मेरेंटेसी पादप परिवार का महत्व

**अंकुर ज्योति सइकीया, तकनीकी सहायक, डॉ. अजय कुमार, वैज्ञानिक–डी,
प्रदीप कुमार हजारिका, वरिष्ठ तकनीकी सहायक एवं अपूर्व कुमार शर्मा, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
वनसंवर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग, वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट, असम**

परिचयः

प्राचीन काल से अथवा मानव सभ्यता की शुरुआत से ही पादप तथा उनके हिस्सो का पारंपरिक औषधि और भोजन के रूप में अहमियत प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त, मानव जीवन की सुरक्षा और बेहतरी के लिए किए गए देवी–देवताओं की पूजा में पादपों का उपयोग किया जाता है। आदिम मनुष्य संग्रहकर्ता, शिकारी और खानाबदोश था। वह भोजन, आश्रय और कुछ बीमारियों व चोटों के उपचार के स्रोत के रूप में पादप सामग्रियों की तलाश में पूरा दिन बिताता था। धीरे–धीरे मनुष्य ने खेती और कृत्रिम खेती द्वारा कुछ पौधों के संसाधनों के स्थायी संरक्षण की आवश्यकता महसूस की। वास्तव में, पौधों ने मानव सभ्यता को काफी हद तक प्रभावित किया है। विभिन्न धार्मिक प्रथाओं में पेड़.पौधों का उपयोग संभवतः धर्म का सबसे पुराना और सबसे प्रचलित रूप है। प्रत्येक ग्रामीण समाज के धार्मिक और सामाजिक समारोहों में पादपों की एक विशेष भूमिका होती है।

असम, भारत के आठ पूर्वोत्तर राज्यों में एक महत्त्वपूर्ण प्रांत है जो कि भौगोलिक व पारिस्थितिक दृष्टिकोण से अनूठा व अद्वितीय है। यहाँ के लोगों में तीन विशिष्ट सांस्कृतिक लक्षण देखे जा सकते हैं वैदिक या हिंदू संस्कृति, तिब्बती–बर्मन या जनजातीय संस्कृति और ताई या अहोम संस्कृति। असम की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि लगभग 2000 साल पुरानी है जब सबसे पहले ऑस्ट्रियो.एशियाटिक और तिब्बती–बर्मन के साथ प्रमुख घटकों के रूप में हुई थी। यहाँ पर बड़ी संख्या में जनजातियां पाई जाती हैं और प्रत्येक जनजाति की अपनी भाषा (या बोली) परंपरा, संस्कृति, पोशाक तथा जीवन शैली में अद्वितीय है। अतः यह कहा जा सकता है कि असमीया संस्कृति इन सभी जातियों की एक समृद्ध सूचिकर्म है जो एक लंबी आत्मसात प्रक्रिया के माध्यम से विकसित हुई है।

जिंजीबरेल्स (Zingiberales) मुख्यतः उष्णकटिबंधीय आवृत्तबीजीय पादपो का एक गण है जो कि अधिकतर महाद्वीपों में पाया जाता हैं तथा आधुनिक व पारंपरिक औषधीय प्रणालियों के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। मेरेंटेसी परिवार इस गण के भीतर सबसे अधिक विकसित परिवारों में से एक है जो ऑस्ट्रेलिया के अतिरिक्त सम्पूर्ण उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में समुद्र तल से 1700 मीटर की ऊंचाई तक मिलता हैं। इस परिवार में कुल 31 वंश तथा 550 प्रजातियो हैं तथा एशिया महाद्वीप में इसके अनुमानिक 8 वंश एवं 55 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। अध्ययन द्वारा यह सुनिश्चित किया गया कि भारत में 7 वंश (*डोनैक्स, इंडियनथस, मेरेंटा, फ्रीनियम, शुमानियन्थस, स्टैकीफ्रीनियम* तथा *थालिया*) और 11 प्रजातियां (*डोनैक्स कैनिफोर्मिस, इंडियनथस विरगेटस, मेरेंटा अरुंडिनेशिया, फ्रिनियम इम्ब्रिकैटम, फ्रिनियम निकोबारिकम, फ्रिनियम प्यूबिनर्व, शुमानियनथस डाइकोटोमस, स्टैकीफ्रीनियम प्लेसेंटारियम, स्टैकीफ्रीनियम रिपेंस, स्टैकीफ्रीनियम स्पाइकैटम* तथा *थालियाजेनिकुलाता*) मौजूद हैं। हमारे देश के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र, जो इंडो–बर्मा जैव विविधता हॉटस्पॉट क्षेत्र में आता है, में इस परिवार की कुछ प्रजातियां पायी जाती हैं। इस परिवार की कई प्रजातियां आर्थिक महत्व की हैं, जैसे कि खाद्य (मेरेंटा अरुंडिनेसि), बुनाई (शुमानियनथस डाइकोटोमस, डोनैक्स कैनिफोर्मिस, इंडियनथस विरगेटस) एवं सजावट (कैलाथिया, गोएपर्शिया व स्ट्रोमेंथे) उद्योग में। असमीया समाज में प्रचलित उत्सव व संस्कारों में भी ऊपर उल्लेख किए गये तरीके से पेड़–पौधों का प्रयोग होता है। प्रस्तुत निबंध में इस समाज में विभिन्न समारोहों में व्यवहृत मेरेंटेसी परिवार के सदस्य प्रजातियों का वर्णन किया जाएगा।

विस्तृत विवरण: असमीया समाज के रीति–रिवाजों में प्रयोग किए जानेवाले तथा मेरेंटेसी परिवार में शामिल पादप प्रजातियों के रूपात्मक लक्षणों व उपयोग के तरीकों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

फ्रिनियम प्यूबिनर्व ब्लूम पर्यायवाची *फ्रिनियम केपिटेतम*

स्थानीय भाषा का नाम: कोउपात

रूपात्मक विवरण: 1.5 मीटर लंबा शाक। पर्ण 18.60 7.25 सेमी, अंडाकार – दीर्घवत, मध्य शिरा के नीचे की ओर मुड़ी हुई अथवा रोमयुक्त पर्णवृन्त 5.60 सेंटीमीटर लंबायवृन्तक 3.7 सेमी; पुष्पक्रम का वृन्तक.शीर्ष और वृन्तक पर्ण की प्रविष्टि स्पष्ट रूप से पृथक स्पाइक 4.7; सहपत्र कुछ से कई आयताकार.भालाकार, 2. 5–4 1.3–2.5 सेमी चर्मित, उम्र के साथ हरा या भूरा–लाल रंग का। फूल सफेद या गुलाबी। बाह्यदल 1.0–1.4 सेमी लंबा, रैखिकयदलपुंज नलिका 0.8.1.1 सेमी लंबी, पंजे वाले पालीयपुंकेसरी नलिका 1.0 सेमी लंबीय बाहरी बंध्य पुंकेसर मोटे, 0.7 सेमी लंबे, भीतरी 0.5 सेमी लंबे । कैप्सूल 1.0.1.5 सेमी लंबे, दीर्घवृत्ताकार, लाल–भूरे रंग के। बीज 2.3।

पुष्पन एवं फलन: अगस्त–नवंबर।

वितरण: पूर्वोत्तर व दक्षिण भारत,श्रीलंका, मलेशिया।

पर्यावास: जंगलों के अंदर नम दलदली इलाकों में।

असमीया समाज में प्रयोग: इस पादप के पत्तों का प्रयोग सामूहिक भोज में खाने की थाली के रूप में होता हैं। कुछ मंदिरों एवं निजी पूजन विधियों में प्रसाद बांधने के लिए भी इसके पत्तों

का उपयोग किया जाता है। प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के व्यापार में जुड़ी पहाड़ निवासी जनजातियों द्वारा इसके पत्तियों का उपयोग संवेष्टन सामग्री के रूप में भी किया जाता है।

चित्रः 1– फ्रिनियम प्यूबिनर्वक – वन्य समष्टि (दिसोई घाटी आरक्षित वन, जोरहाट, असम); ख – एकल पौधा (व.व.अ.सं. के वनस्पति.उद्यान में संरक्षित)

चित्रः 2– बाज़ार में फ्रिनियम प्यूबिनर्व के पत्ते की बिक्री ; स्रोत:https://www.alibaba.com/product-detail/Dong-Leaves-La-dong-Phrynium-leaves_50037922548.html,https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Phrynium_pubinerve.Laos.jpg)

ख) शुमानियनथस डाइकोटोमस (रोक्सब.) xxusi.

पर्याय *फ्रिनियम डाइकोटोमायक्लिनोगाइन डाइकोटोमा*

स्थानीय भाषा का नामः पातिदोई

रूपात्मक विवरणः 2.5 मीटर तक ऊंची झाड़ियाँ, प्रकंद.युक्त, ऊर्ध्वशीर्षय हरित, चमकदार, समाद्विभाजी शाखाविन्यास युक्त, पत्तेदार तना गंठीले जड़। पर्ण अंडाकार – दीर्घवत, 10. 40 6.12 सेमी, अरोमिल, शीर्ष तीव्र। सफेद फूल शाखित पुष्पगुच्छों में उभरते हैं, 2 बंध्य पुंकेसर, 3 कोशिका युक्त अंडाशयय फल अस्फुटनशील, अर्ध.गोलाकार ।

पुष्पन एवं फलनः दिसंबर. अप्रैल।

वितरणः पूर्वोत्तर व दक्षिण भारत श्रीलंका बांग्लादेश।

पर्यावासः जल स्त्रोतों तथा वन के निकटवर्ती क्षेत्र।

असमीया समाज में प्रयोगः इस पादप का मुख्य प्रयोग "पाटी" नामक शांत, चिकनी और चमकदार पारंपरिक चटाई के निर्माण में होता है । मुख्यतः इसे बैठने के उपकरणों, बिस्तर की चटाई के रूप में उपयोग करते है। इसका प्रयोग "टूलनी बिया" (कन्याओं के प्रथम ऋतुस्राव उपलक्ष्य में आयोजित अनुष्ठान), "बर बिया" (वर–वधू के विवाह अनुष्ठान) व प्राक अन्त्येष्टि क्रियायों में होता है। इसके उपरांत, आंतरिक सजावट के अतिरिक्त इससे वॉलेट, हैंड–बैग, फाइल कवर, डाइनिंग मैट, टोपी आदि भी बनाकर तैयार किए जाते हैं।

चित्रः 3– शुमानियनथस डाइकोटोमस क – गैर.स्थानिक संरक्षण क्षेत्र ; व.व.अ.सं. के वनस्पति उद्यान में संरक्षित ख – नये प्ररोह, ग – पुष्प सहित पुष्पक्रम

चित्रः 4–5 शुमानियनथस डाइकोटोमस निर्मित "पाटी" (चटाई) – वन अनुसंधान संस्थान (देहरादून) के गैर काष्ठ वनोपज संग्रहालय में संरक्षित चटाई का नमूना

(स्रोत: https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Exhibits_at_NWFP_Museum,_FRI_Dehradun_04.JPG), ख – चटाई का नमूना (स्रोत: https://www.indiamart.com/proddetail/cane-shital-pati-mat-16652379088.html)

उपसंहारः उपरोल्लिखित प्रजातियों में *फ्रिनियम प्यूबिनर्व* में कोई कृषि तकनीक नहीं है परंतु *शुमानियनथस डाइकोटोमस* में मानक कृषि पद्धति का उपयोग देखा जाता है। कृषि पद्धति के अभाव में *फ्रिनियम प्यूबिनर्व* का वनो से असंतुलित दोहन किया जाता है। तथा उक्त पादप से रूपात्मक समानता वाले प्रजातियाँ जैसे फ्रिनियम इम्ब्रिकैटम व स्टैकीफ्रीनियम प्लेसेंटारियम का भी दोहन किया जाता हैं। अतः इन सभी पादप प्रजातियों के संरक्षण पर ज़ोर देना चाहिए। तथा इनके वाणिज्यिक कृषि हेतु प्रजनक कौशल पर कृषकों को तथ्य प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। मूल्य वर्धन फ्रिनियम के पत्तों की साल भर उपलब्धता इसे मांस, सब्जियों और फलों के लिए उपयुक्त पैकेजिंग सामग्री बनाती है। इसके अलावा, पॉलीथीन बैग की तुलना में, पैकेजिंग सामग्री के रूप में इसकी उपयोगिता का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समर्थन किया जा सकता है। पड़ोसी राज्य मेघालय में इसके अंतरदेशीय और अंतरराष्ट्रीय निर्यात की गुंजाइश पर विचार किया जा रहा है। वियतनाम तथा लाओस में इन पत्तों के बाजार उपयोगिता तथा शेल्फ आयु में वृद्धि हेतु इनके शीत भंडारण पर भी ध्यान दिया जाता हैं। इस प्रकार यह दरिद्र श्रेणी की आजीविका स्त्रोत के रूप में भी कारगर सिद्ध हो सकता है। *शुमानियनथस डाइकोटोमस* से प्रस्तुत चटाई का भी निर्यात मूल्यांकन योग्य है तथा पड़ोसी मुल्क बांग्लादेश की भांति भारत भी इस कुटीर शिल्प को प्रोत्साहन दे सकता है। अतः इस से संबंधित शोध कार्यों तथा इसके व्यावसायिक खेती, मूल्यवर्धन और उत्पादन को विस्तार दिया जाना चाहिए।

अंकुर ज्योति सइकीया
तकनीकी सहायक

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

पॉलीप्लोइडी: वन वृक्षों में विकास दर और जैव रसायनों का उत्पादन बढ़ाने की विधि

डॉ. अंजलि जोशी, वैज्ञानिक बी एवं डॉ. अदिति टेलर, वैज्ञानिक बी,
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

परिचय:

यूकेरियोटिक क्रम–विकास में 1907 में पॉलीप्लोइडी की खोज एक प्रमुख घटना थी जो कई पौधों, जानवरों और कवक में की गई थी। पॉलीप्लोइडी में जीनोम संख्या में गुणन होता है जो सामान्य डिपलॉइड सेट से अधिक होता है और माना जाता है कि यह प्रजाति के विविधीकरण में प्रमुख भूमिका निभाता है। सामान्यतः दो तरह के पॉलीप्लॉइड होते हैं: ऑटोपोलिप्लोइड, जो समान पूर्वजों के जीनोम दोहराव से उत्पन्न होता है और एलोपोलिप्लोइड, जो भिन्न जीनोम वाले माता–पिता के संकरण के उपरांत हुए जीनोम दोहराव से उत्पन्न होता है। ब्लेकस्ली और एवरी ने 1937 में कृत्रिम पॉलीप्लाइडाइजेशन तकनीक स्थापित की और 1930 के दशक में इसे कृषि में प्रभावी ढंग से लागू किया। हालांकि, कृत्रिम पॉलीप्लाइडाइजेशन की प्रक्रिया को सबसे पहले 1966 में मुराशिग और नाकानो द्वारा तंबाकू में मानकीकृत किया गया। 1990 के दशक में प्लांट टिशू कल्चर के क्षेत्र में हुई प्रगति ने कृत्रिम पॉलीप्लाइडाइजेशन की प्रक्रिया को और अधिक लोकप्रिय और सफल बनाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्राकर्तिक परिवेश में पॉलीप्लोइड, इंट्रास्पेसिफिक जीनोम दोहरीकरण (ऑटोपॉलीप्लोइडी) या अलग–अलग प्रजातियों के जीनोम के संकरण और दोहरीकरण (एलोपॉलीप्लोइडी) के माध्यम से उत्पन्न होते हैं। विभिन्न रसायनों का प्रयोग करके इन विट्रो गुणसूत्र दोहरीकरण भी किया जा सकता है। इन रसायनों को एंटीमाईटोटिक एजेंट कहा जाता है। कॉलचीकम ऑटमनेल से प्राप्त होने वाला रसायन कॉलचीसीन प्रमुख रूप से गुणसूत्र दोहरीकरण के लिए प्रयोग में लाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि अधिकांश एंजियोस्पर्म एक या एक से अधिक पॉलीप्लाइडाइजेशनें प्रक्रियाओं से गुजर चुके हैं।

आम तौर पर, प्राकृतिक पॉलीप्लोइड पौधे दुर्लभ होते हैं। यह पाया गया है कि पॉलीप्लोइड लगभग प्रति 100,000 पौधों की आवृत्ति पर केवल 1 प्राकृतिक रूप से बनते हैं। सभी प्रजातियों के पौधों में पॉलीप्लॉइड प्राकृतिक रूप से नहीं बनते हैं। इसलिए, इन्हें इंटरस्पेसिफिक संकरण, इन विट्रो एंडोस्पर्म कल्चर या माइटोटिक अवरोधकों के उपयोग द्वारा सोमैटिक सेल दोहरीकरण के माध्यम से उच्च आवृत्ति में कृत्रिम रूप से बनाया जा सकता है। कोल्चिसिन एक व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला माइटोटिक अवरोधक है, जो कोशिका विभाजन के दौरान होने वाले क्रोमोसोम अलगाव को रोककर ऑटोपॉलीप्लॉइड पौधों के उत्सर्जन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विभिन्न विधियों जैसे डिपिंग, सोकिंग एवं रुई द्वारा माइटोटिक अवरोधकों से पौधों के विभिन्न अंगों जैसे बीज, ऐपिकल मेरीस्टेम, कलियों और जड़ों को उपचारित कर पॉलीप्लॉइड पौधों को उत्पन्न किया जा सकता है। फ्लो साइटोमेट्री, क्रोमोसोम गड़ना एवं रूपात्मक लक्षणों का अवलोकन पौधों का प्लोइडी स्तर निर्धारित करने के लिए उपयोग में लाई जाने वाली नियमित प्रक्रियाएं हैं।

अपने डिपलॉइड समकक्षों की तुलना में पॉलीप्लॉइड के बेहतर प्रदर्शन के विभिन्न कारण हैं। सबसे पहला कारण है कि हर पॉलीप्लोइड में किसी भी जीन के एलील्स बढ़ी हुई संख्या में मौजूद होते हैं जो हानिकारक उत्परिवर्तन के एलील्स को अभिव्यक्त नहीं होने देते और पौधे के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करते हैं। हैटरोसिस के कारण पॉलीप्लॉइडस के वंशज अपने डिपलॉइड समकक्षों की तुलना में अधिक ट्रांसग्रेसिव सेगरीगेशन प्रदर्शित करते हैं। यह एलोपॉलीप्लोइड्स और ऑटोपोलिप्लोइड्स को श्रेष्ठा प्रदान करने वाला दूसरा कारक है। डिपलॉइड संकरों में जहां समजातीय पुनर्संयोजन के कारण बाद की पीढ़ियों में संकर शक्ति का क्षय होता है वहीं एलोपोलिप्लोइड में हैटरोसिस स्थिर रहता है। पॉलीप्लॉइड के बेहतर प्रदर्शन का तीसरा कारक इस संभावना से उपजा है कि पॉलीप्लॉइड में मौजूद विभिन्न जीन प्रतियां विविध कार्यों को करने के लिए विकसित हो सकती हैं, जो संभावित रूप से पर्यावरणीय परिवर्तन के प्रति जीव की अनुक्रियाशीलता में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह भी देखा गया है कि पॉलीप्लोइड्स अपने डिपलॉइड समकक्षों की तुलना में बेहतर विकास दर और जैव रासायनिक के उच्च उत्पादन की क्षमता रखते हैं।

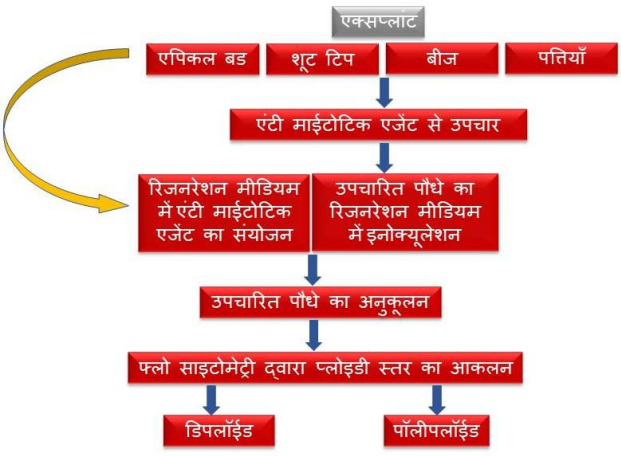

पॉलीप्लोइडी द्वारा वन वृक्षों की विकास दर और जैव रसायन उत्पादकता में वृद्धि

आम तौर पर, पॉलीप्लोइड अपनी डिपलॉइड पैतृक प्रजातियों की तुलना में अधिक पुष्ट होते हैं। डायलो और साथी ने पॉलीप्लॉइड अंकुर में डिपलॉइड अंकुर की तुलना में बेहतर वृद्धि दर सिद्ध करने के उद्देश्य से 2016 में अकेशिया सेनेगल के विभिन्न साइटोटाइप्स की वृद्धि दर की तुलना की। उन्होंने देखा कि पॉलीप्लॉइड अपने समकक्ष डिपलॉइड के साथ विभिन्न आबादी में भिन्न–भिन्न अनुपात में पाए जाते हैं और यह पॉलीप्लॉइड 18 साल पुराने क्षेत्र परीक्षण में डिपलॉइड की तुलना में अधिक तेजी से विकसित होते हुए पाए गए। पॉलीप्लोइड श्रेष्ठता ट्रंक व्यास में 17% और वृक्ष ऊंचाई में 9% पाई गई। ग्रोथ चैंबर प्रयोग में, पॉलीपलॉइड वृक्षों की ऊंचाई डिपलॉइड वृक्षों के मुकाबले 28% अधिक थी। बांज में भी पॉलीपलॉइड की उत्पादकता डिपलॉइड की तुलना में अधिक पाई गई। पॉलीपलॉइड बांज के वृक्ष असामान्य रूप से बड़े होने के कारण समान उम्र के अन्य डिपलॉइड वृक्षों से भिन्न होते हैं और उनमें कुलीन पेड़ों की सभी विशेषताएं पाई जाती हैं।

हरबार्ड और साथी ने 2012 में अकेशिया मैनजीयम में कोल्चिसिन उपचार द्वारा बनाये गए पॉलीप्लॉइड का अध्ययन किया और पाया कि 26 महीनों के उपरांत, टेट्राप्लोइड पौधों की पत्तियां डिपलॉइड की तुलना में अधिक मोटी और चौड़ी थी, साथ ही पॉलीप्लॉइड का छाल तना व्यास अनुपात भी अधिक था। सामान्य तौर पर, पॉलीप्लोइड्स में उनके डिपलॉइड पूर्वजों की तुलना में एक व्यापक क्षेत्र को उपनिवेशित करने और कठोर अस्थिर वातावरण में बेहतर ढंग से जीवित रहने की अधिक क्षमता होती है। संभवतः यह अतिरिक्त एलील्स की उपस्थिति द्वारा प्रदान की गई हेट्रोजयगोसिटी और जीनिक और जैव रासायनिक लचीलेपन के कारण संभव हो पाता है। इसके अलावा, अपने डिपलॉइड पूर्वजों की तुलना में, ट्रिपलोइड सूखे के प्रति अधिक सहिष्णु होते हैं और विभिन्न अप्रधान पौधा चयापचयों के बढ़े हुए उत्पादन के कारण रोगजनकों और कीटों के लिए अधिक प्रतिरोधी भी होते हैं।

भुवनेश्वरी और साथी ने 2019 में सिट्रस लिमोन में कोल्चिसिन उपचार द्वारा उत्पादित टेट्राप्लोइड्स का अध्ययन किया और टेट्राप्लोइड्स में साईक्लिक मोनोटरपीन एवं लिमोनीन की मात्रा में काफी वृद्धि दर्ज़ की। उन्होंने आरटी–पीसीआर विश्लेषण भी किया और यह निष्कर्ष निकाला कि सिट्रस लिमोन के टेट्राप्लोइड्स में लिमोनीन सिंथेज़, चाल्कोन सिंथेज़ और फीनाइलऐलेनिन अमोनिया लाएज़ जैसे जीन अधिक पाए गये, जो दर्शाता है कि सिट्रस लिमोन के टेट्राप्लोइड सगंध तेल का एक बेहतर स्रोत हो सकता है।

ग्रुइटर (2020) ने टेट्राप्लोइड और डिपलॉइड ड्रमस्टिक पेड़ों की पत्तियों और अंकुरों में रूपात्मक गुण और चारे से संबंधित पोषक तत्वों जैसे क्रूड प्रोटीन, ईथर का अर्क, राख, एसिड डिटर्जेंट फाइबर, न्यूट्रल डिटर्जेंट फाइबर, कैल्शियम और फास्फोरस की तुलना की और यह पाया कि डिपलॉइड की तुलना में टेट्राप्लोइड में सभी सात चारे से संबंधित पोषक तत्वों की मात्रा अधिक थी। इस प्रयोग के परिणामों से पता चला कि उत्पादित टेट्राप्लोइड्स ने डिपलॉइड की तुलना में बेहतर कृषि संबंधी लक्षणों और बेहतर बायोमास उपज का प्रदर्शन किया, और यह टेट्राप्लोइड्स पौष्टिक चारे का उत्पादन करने के लिए उत्कृष्ट थे। मो और साथी ने रोडोडेंड्रोन प्रजातियों के पॉलीप्लोइड्स में क्लोरोफिल की मात्रा अत्याधिक पाई जिस कारण इनकी पत्तियां का रंग गहरा हरा था और इनमें फ़ोटोसिंथेसिस की दर में भी वृद्धि दर्ज़ की गई।

निष्कर्ष:

हमारी मिट्टी और जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल जीनोटाइप प्राप्त करने के लिए आनुवंशिक सुधार अत्यंत आवश्यक है। वन वृक्षों की प्रजातियों की जीवन अवधि आम तौर पर कई वर्षों की होती है। जिस कारण वृक्ष सुधार के लिए प्रजनन कार्यक्रम आम तौर पर धीमा, महंगा और जटिल हो जाता है। इन प्रजातियों के लंबे प्रजनन चक्र को ध्यान में रखते हुए, प्रजनन चक्रों की गति में वृद्धि करने के लिए विभिन्न तकनीकी विकास किए गए हैं जिसमें से एक तकनीक पॉलीप्लोडाइजेशन है। पॉलीप्लोइडी प्रकृति में मौजूद है और यह नई परिवर्तनशीलता पैदा करने का एक तरीका भी है। इसके अलावा, उत्पन्न पॉलीप्लॉइड अपने डिपलॉइड समकक्षों की तुलना में विकास के साथ–साथ जैव रासायनिक उत्पादन के संबंध में बेहतर पाए गए हैं। इसलिए, विशेष रूप से विभिन्न पेड़ प्रजातियों में पॉलीप्लोइड प्रजनन किया जाना चाहिए ताकि विभिन्न आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण लक्षणों में उल्लेखनीय सुधार प्राप्त किया जा सके।

डॉ. अंजलि जोशी
वैज्ञानिक–बी

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

बौहिनिया वेरिएगेटा (कचनार) : एक महत्वपूर्ण बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजाति

डॉ. स्वर्ण लता, वैज्ञानिक–डी एवं दृष्टि शर्मा, तकनीशियन
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला, हि० प्र०

परिचयः

बौहिनिया वेरिएगेटा पश्चिमी हिमालय के निचले एवं मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों की महत्वपूर्ण चारा वृक्ष प्रजाति है। यह प्रजाति फैबेसी परिवार से सम्बंध रखती है। इसे स्थानीय भाषा में कचनार, करयाल एवं रक्त कंचन व अंग्रेजी में माउंटेन एबोनी एवं और किडट्री के नाम से जाना जाता है। यह वृक्ष न केवल स्थानीय लोगों की चारे की आवश्यकता की पूर्ति करता है अपितु अन्य रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है औषधीय गुणों के कारण इस प्रजाति के अलग–अलग हिस्सों जैसे कि फूल,छाल, जड एवं बीजों का स्थानीय लोगों द्वारा परंपरागत चिकित्सा प्रणाली में भी विभिन्न रोगों के उपचार हेतु उपयोग किया जाता रहा हैं। इस प्रजाति की अत्यधिक महत्वता एवं इसके सुंदर फूलों के कारण वर्ष 1981 में भारतीय डाक विभाग ने इस पर डाक टिकट भी जारी किया था। यह हमारे देश के बिहार राज्य का राजकीय पुष्प भी है।

चित्रः01 कचनार

वितरण एवं आवासः

यह दक्षिण पूर्वी एशिया की स्थानीय प्रजाति है तथा भारत, चीन, पाकिस्तान, म्यांमार, उत्तरी थाईलैंड, उत्तरी वियतनाम, कंबोडिया और लाओस आदि देशों में गर्म शीतोष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत में यह वृक्ष बिहार, दिल्ली, जम्मू और कश्मीर, मध्य–प्रदेश, कर्नाटक, मणिपुर, नागालैंड, मेघालय, उड़ीसा, मिजोरम, पंजाब, हिमाचल–प्रदेश, पांडिचेरी, उत्तर–प्रदेश, तमिलनाडु, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल एवं सिक्किम में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में यह ऊना, बिलासपुर, सोलन, कुल्लू, सिरमौर, शिमला, हमीरपुर, कांगड़ा, चंबा एवं मंडी जिलों में निचले एवं मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह मुख्यतः कृषि वानिकी में भूमि उपयोग प्रणालियों में तथा आमतौर पर 1300 मीटर से कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों पायी जाती है।

वानस्पतिक विवरणः

यह एक मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है जिसकी ऊंचाई 10–12 मीटर और व्यास 50 सेमी. होती है। इसकी छाल गहरे भूरे रंग की खुरदरी होती है जिसमें दरारें होती है। इसके पत्ते 2–6 इंच लंबे और 3–7 इंच चौड़े एवं द्विखंडित गोल होते है। सर्दियों में पाले से इसकी पत्तियां सुख जाती हैं, लेकिन गर्मियों के दौरान ये पुनः आ जाती हैं। यह वृक्ष दिसम्बर से अप्रैल माह तक पत्ति रहित रहता है तथा अप्रैल–मई माह में इसमें फूल खिलते है, जो गुलाबी–बैंगनी सफ़ेद रंग के होते है। इस वृक्ष में 2–3 साल की आयु में फूल उगना शुरू हो जाता है। फूल मई–जून माह में फली बनते है, फली 15–30 सेंटी मीटर लंबी व 1.8–2.5 सेंटीमीटर चौड़ी होती है। जिसमें कई बीज होते हैं। बीज़ 1.3–1.9 सेंटीमीटर गोल चपटे भूरे रंग के होते है।

प्राकृतिक पुनर्जननः

वर्तमान में इसके प्राकृतिक पुनर्जनन की दर संतोषजनक है। इसके आवास स्थलों में इसका प्राकृतिक पुनर्जनन बीजों द्वारा होता है। यह अच्छी जल निकासी वाली अम्लीय मिट्टी में उगता है तथा इसकी वृद्धि के लिए 32–42C (औसत गर्म तापमान) 7–14C (औसत सर्द तापमान) 760–1900 मिमी. वर्षा उपयुक्त होती है। वर्षा ऋतु में इस वृक्ष की नयी पौध वृक्ष के इर्द–गिर्द उग जातें है। यदि इसके बीज़ खुले स्थान पर उगते है उनमें धूप के कारण मृत्यु दर अधिक होती है। इसे कृत्रिम पुनर्जनन विधियों द्वारा भी उगाया जाता है ।

कृत्रिम पुनर्जननः

इसे सीधी बुआई तथा नर्सरी में पौध तैयार कर पौधा रोपण एवं स्टंप रोपण कर के उगाया जा सकता है। सीधी बुआई से पौधे लगाना कृत्रिम पुनर्जनन तकनीक का सबसे सफल तरीका है। लोगों द्वारा मई–जून माह में फलियों को एकत्रित कर धूप में सुखाया जाता है तथा बीजों को अलग किया जाता है। बीजों को यदि बंद डिब्बे में रखा जाए तो इन की जीवन क्षमता एक वर्ष तक होती है तथा 95% तक अंकुरण की संभावना होती है। आमतौर पर नर्सरी में आकार में बड़े व भारी बीजों को लगाया जाता है क्यूंकि इसमें बढ़ते हुई भ्रूण के लिए पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व होतें है। यह भी पाया गया है कि बीजों को अच्छी तरह साफ करने के बाद लगाने से भी अंकुरण की दर बढ़ जाती है। बीजों से पौध तैयार करने के लिए बीजों को 3 मीटर की दूरी पर 5–6 सेंटी मीटर की गहराई पर लगाया जाता है। एक सप्ताह के अंदर ही इसका अंकुरण प्रारम्भ हो जाता है। पौधा रोपण के लिए एक वर्ष के पौधे को लगाना बेहतर माना जाता है।

नर्सरी तकनीकः

इसे नर्सरी में लगाने से पहले ज़मीन से घास व खरपतवार को हटाकर भूमि को समतल किया जाता है। 10 mÛ 1 m आकार नर्सरी बेड बनाए जातें है। बुआई से पहले बीजों को 24 घंटे तक पानी में रखा जाता है। नर्सरी में बीजों की सीधी बुआई की जाती है। बीजों को 20–25 cm दूरी पर 1 cm की गहराई पर लगाया जाता है। जुलाई–अगस्त में इन्हें रोपित करने के लिए इन्हे मार्च–अप्रैल की समयावधि में नर्सरी में बीजों को बोया जाता है तथा जब तक अंकुरण न हो तब तक सिंचाई की जाती है। अंकुरण 6–7 दिन में शुरू हो जाता है तथा 15 दिन कि अवधि में ये पूर्ण रूप से अंकुरित हो जाता है। निरंतर निराई से नर्सरी में पौधों का अच्छा विकास होता है। अच्छी गुणवत्ता वाली पौध तैयार करने के लिए उर्वरकों का उपयोग भी किया जा सकता है। एक हेक्टेयर में नाइट्रोजन 60Kg फॉस्फेट 40kg एवं पोटाश 40Kg का उपयोग किया जा सकता है। फॉस्फेट और पोटाश को बुआई के समय व नाइट्रोजन को दो चरणों में बुआई के समय व उसके बाद उपयोग किया जा सकता है। नर्सरी बेड बनाते समय जैविक खाद डाली जाती है जिससे मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ जाती है तथा पौध को विकास के लिए उचित माध्यम भी मिल जाता है। कचनार की पौध को पॉलिथीन बैग में भी उगाया जाता है। इसके लिए पॉलिथीन बैग में रेत, मिट्टी व खाद को बराबर मात्रा में मिलाया जाता है तथा प्रत्येक बैग में 2–3 बीज़ लगाए जाते है।

रोपण तकनीकः

नर्सरी में तैयार किए पौधों को 30 सेंटीमीटर के गड्ढे में 2.5 mÛ 2.5 m;k 3.0 mÛ 3.0 m की दूरी पर जड़ों को बिना नुक्सान पहुंचाए लगाना चाहिए।

स्टंप रोपणः

ठस प्रजाति को स्टंप रोपण तकनीक से भी उगाया जा सकता है इसके लिए 12–15 माह के पौधों को उपयोग किया जाता है। इसके लिए 1सेमी से कम व्यास व 2 सेमी. से अधिक व्यास वाले पौध का उपयोग नहीं किया जाता। इसमें शूट को काटकर 2–3 सेमी. भाग छोड़ दिया जाता है। 20–22 सेमी. की मूल जड़ को रखा जाता है। पार्श्व जड़ों को काट दिया जाता है। स्टंप की रोपाई 30 सेमी. के गड्ढे में की जाती है इसमें 98% तक सफलता मिलती है।

बौहिनिया वेरिएगेटा (कचनार) की महत्वाः

इसके अत्याधिक महत्वा के कारण पश्चिमी हिमालय क्षेत्र के लोगों की यह पसंदीदा वन्य वृक्ष प्रजाति है। मुख्यतः चारे की मांग की पूर्ति हेतु स्थानीय लोग इसे अपने खेतों के आसपास उगाना पसंद करते हैं जिस कारण कृषि वानिकी भूमि उपयोग प्रणालियों में इसकी आबादी अधिक देखी जाती है। वन विभाग द्वारा इसकी नर्सरी भी उगाई जाती है तथा स्थानीय लोग वन विभाग से इसकी पौध रोपण के लिए प्राप्त कर सकते हैं ।

पारिस्थितिक महत्वताः

गहरी जड़ प्रणाली के साथ उच्च जड़ शाखा का अनुपात होने के कारण यह ढलान वाले स्थलों में भूमिकटाव के स्थिरीकरण के लिए यह उपयुक्त प्रजाति है। यह मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने की भी अपार क्षमता रखता है क्यूंकि इसमें नाइट्रोजन फ़िक्सेशन की भी अपार क्षमता होती है इसलिए लोग इस प्रजाति को अम्लीय एवं अवक्रमित मिट्टी को बहाल करने के लिए भी उपयोग करते हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक महत्वाः

चित्रः 2–5 : बौहिनिया वेरिगेएटा (कचनार) के उपयोग

चारा : यह प्रजाति पश्चमी हिमालयी क्षेत्र की महत्वपूर्ण चारा प्रजातियों में से एक है तथा इसकी पत्तियां गाय, भेड़, बकरी और मेवेशियों द्वारा बड़े चाव से खायी जाती हैं। एक वृक्ष से प्रतिवर्ष लगभग15–20 किलोग्राम चारा प्राप्त होता है। आंशिक रूप से बड़े पत्ते सर्दियों में चारे के लिए उपयुक्त माने जाते हैं।

ईंधनः इसकी लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में भी किया जाता है।

भोजन : इसके फूल और कलियों को कचनार की सब्जी के रूप में खाया जाता है तथा इसके फूलों से चटनी, रायता एवं पकोड़े बनाये जाते हैं। कलियों से आचार भी बनाई जाती है।

औषधि : पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में इस वृक्ष के सभी भागों का औषधीय उपयोग किया जाता है। इसकी छाल का क्वाथ बनाकर पीने से मुंह के छालों में आराम मिलता है। इसकी छाल पेचिश, बवासीर, मलेरिया, कुष्टरोग रक्तविकार, फोड़े, फुंसी की समस्याओं में उपयोग की जाती है। इसकी पत्तियों का पेस्ट बनाकर सिर पर लगाने से सिरदर्द में आराम मिलता है। इसकी

फूलों से बनी सब्जी खाने से कब्ज़ में आराम मिलता है। इससे बना कचनार गुग्गल गुर्दे की पथरी, थायरइड, रक्त और मूत्र से संबन्धित बीमारीयों को ठीक करने में उपयोग होता है। जड़ों के लेप को सूजन में लगाने से सूजन कम हो जाती है। जड़ों के क्वाथ का उपयोग साँप के काटने पर उपचार एवं मोटापे को कम करने में किया जाता है। इसकी कलियों को घी में भूनकर खाने से भूख बढ़ जाती है। पतियों के अर्क को बवासीर ठीक करने के लिए उपयोग की जाती है। सूखी कलियों का उपयोग कृमि संक्रमण, रसौली, अतिसार और बवासीर के उपचार में किया जाता है।

रंग : इसकी छाल से भूरा रंग निकलता है जिसका उपयोग कपड़ों की रंगाई में किया जाता है।

रेशा : इसकी छाल से रेशा निकलता है जिससे रस्सियाँ बनायी जाती है

घरेलु सामान : इसकी लकड़ी गहरे भूरे रंग की मजबूत होती है जिसका उपयोग कृषि उपकरण के हैंडल, पैकिंग बॉक्स, खंबे इत्यादि बनाने में किया जाता है।

सजावट : इसे इसके गुलाबी, बैंगनी एवं सफ़ेद सुंदर फूलों एवं गाय के खुर के आकार के पत्तों के कारण इन्हें अक्सर घरों, सड़कों, रास्तों, पार्क एवं उद्यानों के आसपास सुंदरता के लिए लगाया जाता है।

आर्थिक महत्वता:

इसके फूलों एवं कलियों को लोगों द्वारा अप्रैल–मई के महीने में एकत्रित कर स्थानीय बाज़ार में 70–100 रूपये/किलो ग्राम की दर पर बेचा जाता है। इस वृक्ष की छाल को औषधीय गुणों के लिए निकाला जाता है तथा रस्सियां भी बनाई जाती है।

निष्कर्ष:

कचनार एक महत्वपूर्ण सामाजिक वानिकी प्रजाति है तथा एक पोष्टिक चारा प्रजाति के रूप में पश्चिमी हिमालय के निचले एवं मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों में लोगों की चारे की मांग की पूर्ति करने में अपार क्षमता रखता है। इस वृक्ष में अत्याधिक छंटाई एवं छंगाई को सहन करने एवं नई कोपले उत्पन्न करने की अत्याधिक क्षमता रखता है, इसी गुण के वजह से यह स्वंय को आसानी से किसी भी परिस्थिति में जीवित रख सकता है। यह मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने की भी अपार क्षमता रखता है। इसके अतिरिक्त यदि इस वृक्ष के उपयोगी हिस्सों का संगठित तरीके से संग्रह किया जाये तो इस वृक्ष से स्थानीय लोगों की आर्थिक सुधार में अपार संभावना है। वर्तमान में इसकी प्राकृतिक आबादी प्रयाप्त होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (International Union for Conservation of Nature) ने कचनार को "संकट मुक्त" (Least Concern) वाली प्रजाति की श्रेणी में रखा है। इस वृक्ष की अत्यधिक महत्ता को देखते हुए इस प्रजाति के वृक्षारोपण को अत्याधिक बढ़ावा देने की आवश्यकता है ताकि लोगों की आजीविका के साथ–साथ अन्य पर्यावरणीय सेवाएं भी प्राप्त होती रहें।

डॉ. स्वर्ण लता
वैज्ञानिक–डी

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

तीन पारिस्थितिकी तंत्र का संगम विराट्रा माता मंदिर, चौहटन (बाड़मेर)

नरेन्द्र कुमार कडेला, कनिष्ठ परियोजना शोधार्थी एवं श्री एस. आर. बालोच, वैज्ञानिक–डी
एवं कुमारी रेखा राना , कनिष्ठ परियोजना शोधार्थी
वन पारिस्थितिकी और जलवायु परिवर्तन प्रभाग, शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

सामान्य परिचयः

चौहटन गाव बाड़मेर जिले के राजस्थान राज्य में स्थित है। इस क्षेत्र का मुख्य पर्यटक स्थल और आकर्षण का केन्द्र यहाँ स्थित विराट्रा माता का मंदिर है जिसे वांकल माता के नाम से भी जाना जाता है। यह एक ओरान (भगवान को समर्पित भूमि है और इसके रखरखाव के लिए कोई प्राधिकरण जिम्मेदार नहीं) के भीतरी क्षेत्र में स्थित है। विराट्रा माता मंदिर की धार्मिक महत्व के साथ–साथ पारिस्थितिकी महत्व भी है। हिंदू पौराणिक कथाओं के अनुसार ओरान स्वयं भगवान द्वारा संरक्षित क्षेत्र है। ओरान में पेड़ काटने और जानवरों को मारने पर पाबंदी है। अक्तूबर और नवंबर के महीने में देश भर के कई क्षेत्रों से भक्त यहां दर्शन के लिए आते हैं। राजस्थान राज्य के जैसलमेर जिले में भादरियाराय ओरान के बाद राजस्थान में दूसरा सबसे बड़ा ओरान भी इसे ही माना जाता है। इस क्षेत्र की जलवायु बहुत गर्म और शुष्क मानी जाती है और मई–जून में अधिकतम तापमान 45°C से 50°C के बीच रहता है और सर्दियों में यह दिसंबर–जनवरी में न्यूनतम 0°C के आसपास गिर जाता है। मानसून के दौरान (जुलाई–सितंबर) इस क्षेत्र में केवल 10°–15° मिली.मी. औसतन वर्षा होती है। इस क्षेत्र की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें तीन पारिस्थितिकी तंत्र एक साथ पाये जाते है, यह एक तरफ से रेत के टीले और दूसरी तरफ से पहाड़िया और दोनों क्षेत्र के बीच में तालाब है। लेकिन इस क्षेत्र में बारिश की कमी के कारण तालाब पारिस्थितिकी तंत्र बहुत कम ही देखने को मिलता है। पहाड़ प्रकृति में आग्नेय चट्टानों से बने होते है। रेत के टीलों के साथ–साथ पहाड़ियों में पेड़ पोधों और जीवों की विशाल विविधता पाई जाती है। रेत के टीलों और पहाड़ियों के बीच के क्षेत्र को संक्रमण क्षेत्र कहा जाता है। जिसमें बहुत अधिक विविधता देखने को मिलती है। यहाँ पर जैव विविधता के साथ–साथ एवियन विविधता भी देखने को मिलती है।

प्रमुख पादप विविधता :

यहाँ पर पाये जाने वाले प्रमुख पादप जैसे *प्रोसोपिस सिनेरेरिया* (खेजड़ी), *टेकोमेला अंडुलाटा* (रोहिड़ा), *अकेसिया सेनेगल* (कुमट), *कोमिफेरा वाइटी* (गुग्गुल), *सल्वाडोरा ओलियोइड्स (मीठी जाल), मोरिंगा कन्कनेंसिस (सेंजन–जंगली सरगुआ), स्टेरकुलिया यूरेन्स* (गमकरैया), *ग्रेविया टेनैक्स* (गोंडनी), *यूफोरबिया कैडुसिफोलिया* (थोर), *प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा* (विलायती बबुल), *लेप्टाडेनिया पाइरोटेकनिका* (खींप), *एर्वा पर्सिका* (सफेद बूई), *सिट्रुलस् कोलोसिन्थिस* (इन्द्रायन) एवं *एफेड्रा फोलिएटा* आदि पादप पाये जाते है।

चित्रः 01 एवं 02 तीनो पारिस्थितिकी तंत्र का मनोरम दृश्य विराट्रा माता मंदिर, चौहटन (बाड़मेर)

चित्रः 03 *स्टेरकुलिया यूरेन्स* (गमकरैया) की आकारिकी और पुष्पन

चित्रः 04 *मोरिंगा कॉन्केनेंसिस* (सेंजन) की आकारिकी और पुष्पन

प्रमुख जन्तु विविधताः

यहाँ पर मिलने वाले प्रमुख जन्तु जैसे कि *गजेला गजेला* (चिंकारा), *बांदीकूटा बेंगार्लेसिस* (चूहा), *वल्पस पुसिला* (मरूलोमड़ी), *वल्पस बेंगार्लेसिस* (भारतीय लोमड़ी), *हर्पेस्टेस एडवर्ड्सि* (नेवला), *पटरोपस गिर्गेटस* (चमगादड़), *फेलिस सिल्वेस्ट्रिसलिबिका* (रेगिस्तानी बिल्ली), *बोसेलफस ट्रैगोकैमेलस* (नीलगाय), *लेपस निग्रीकोलिस* (भारतीय खरगोश) आदि यहाँ पाये जाते है ।

प्रमुख एवियन विविधताः

पावो क्रिस्टेटस (मोर), *जिप्स इन्डिकस* (भारतीय गिद्ध), *फ्रैंकोलिनस पौंडिसरिएनस* (तीतर), *स्ट्रेप्टोपेलिया डिकाओक्टो* (कॉलर वाला कबूतर), *पाइकोनोटस ल्यूकोटिस* (सफेद कान वाला बुलबुल) *पाइकोनोटस कैफेर* (रेड वेंटेड बुलबुल), *टर्डोइड्स क०डैटस* (आम बब्बलर) आदि यहाँ पाये जाते है ।

जैव विविधता विलुप्ति के कारण :

सीनीय लोगों ने बताया कि जैव विविधता विलुप्ति का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि संरक्षण की दृष्टि से प्राधिकरण की भागीदारी न्यूनतम और कम बारिश के अलावा पानी का कोई स्रोत नहीं होने कारण से यहाँ की जैव विविधता में कमी देखी जा रही है ।

जैव विविधता संरक्षण के उपायः
जैव विविधता के संरक्षण के लिये प्राधिकरण की भूमिका को अनिवार्य कर देना चाहिए ताकि यहाँ विभिन्न प्रकार की विकासात्मक योजना को क्रियान्वित किया जा सके। पक्षियों के लिए उचित जलाशय बनाकर पानी की समस्या को हल किया जा सकता है।

बोर्ड या पोस्टर लगा कर स्थानीय लोगों तथा पर्यटकों को यहाँ पर पाई जाने वाली जैव विविधता के बारे में अवगत कराया जा सकता है यहाँ पर विभिन प्रकार के मनोरंजन केंद्र, इको कैंपिंग, रिसॉर्ट्स, आगंतुक केंद्र आदि का विकास करके पर्यटन को बढावा दिया जा सकता है।

पौंधों की देखभाल के लिये स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी होनी चाहिये। स्कूल और कॉलेज के विधार्थी के लिए यहाँ पर शैक्षिक भ्रमण होना चाहिए ताकि पर्यटन को बढावा मिलने के साथ–साथ आय का स्रोत भी बढ़ सके और जिसके माध्यम से स्थानीय समुदाय इस क्षेत्र के पुष्प, जीव और जल निकायों को संरक्षित करने में सक्षम होंगे।

नरेन्द्र कुमार कडेला
कनिष्ठ परियोजना शोधार्थी

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

कैर (*कैप्परिस डेसिडुआ*)– शुष्क क्षेत्रें का एक महत्वपूर्ण अकाल पादप

देशा मीणा, वैज्ञानिक–सी एवं स्वाति प्रसाद, कानिष्ठ परियोजना शोधार्थी
, शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

परिचय :

भारतीय थार रेगिस्तान में कई पादप प्रजातियाँ हैं, जैसे *प्रॉप्सोपिस सिनेरिया*, बबूल सेनेगल, *कैरिसा कैरंडास* और *कैप्परिस डेसिडुआ* जो पोषक तत्वों से भरपूर हैं और मनुष्यों के लिए भोजन और जानवरों के लिए एक महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत है। *कैप्परिस डेसिडुआ* एक स्वदेशी बहुउद्देशीय, बारहमासी छोटा वृक्ष है जो दुनिया के कई हिस्सों के गर्म शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। इसे कैर (केरदा) के नाम से जाना जाता है। यह एक कांटेदार, शाखित, हरी टहनी दिखने वाली झाड़ी या छोटा वृक्ष है जो घने गोलाकार मुकुटों के साथ लगभग 7 मीटर ऊँचाई तक बढ़ता है। कैर 300–1,200 मीटर की ऊँचाई पर 100–750 मिमी की वार्षिक वर्षा और 25–48 डिग्री सेल्सियस के औसत तापमान के साथ पाया जाता है तथा 6.5–8.5 पीएच के साथ क्षारीय, रेतीली, बजरी वाली मिट्टी और लवणीय सोडिक मिट्टी पर अच्छी तरह से पनपता है। युवा होने पर तने की छाल चिकनी और हरी होती है और उम्र बढ़ने के साथ धूसर हो जाती है। कैर के फल गोलाकार होते हैं, जो लंबे डंठल पर पैदा होते हैं। अपरिपक्व होने पर फल हरे और पकने पर लाल या गुलाबी रंग के होते हैं। कैर में फूल साल में तीन बार आते हैं परुन्तु चरम मौसम फरबरी–मार्च और फलने का मौसम–मार्च अप्रैल होता है बाकि दो मौसम मृग बहार (जुलाई–अगस्त) एवं हस्त बहार (अक्तूबर–नवम्बर) वाले बीज का अनुकरण संक्रमण के कारण 1% तक ही होता है।

चित्रः 01

चित्रः 02

कैर के कच्चे फल और फूल

कैर का वितरण :

कैर भारतीय उपमहाद्वीप, अफ्रीका और सऊदी अरब के रेगिस्तान और शुष्क क्षेत्रों में मूल रूप से पाया जाता है। यह अफ्रीका, तिबेस्टी, सूडान, अरब प्रायद्वीप, मिस्र, ईरान, भारत, जॉर्डन, पाकिस्तान और मस्कारेन द्वीप समूह में बढ़ रहा है। उपमहाद्वीप में, यह सिंध, बलूचिस्तान, पश्चिमी राजपुताना, दक्कन, मध्य भारत, पंजाब, गुजरात और टिनवेल्ली के शुष्क स्थानों में सर्वदेशीय है। कैर शुष्क मैदानों, अर्ध–स्थिर रेत के टीलों के किनारों और 1200 मीटर की ऊँचाई तक के लहरदार और गहरे विच्छेदित क्षेत्रों में भी पाया जाता है। भारत में, कैर राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के कई हिस्सों के शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। कैर राजस्थान के बीकानेर और जोधपुर जिलों में 3,450 कि.मी. तक मैदानों में वितरित है, जिसका अनुमानित वार्षिक फल उत्पादन 7,000 टन है।

वर्गीकरण :

कैप्परिस डेसिडुआ कैप्पारेसी (Capparaceae) परिवार का सदस्य है। टैक्सोनॉमिक रूप से कैर को निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है।

किंगडम – प्लांटी

फाइलम – ट्रेकोफाइटा

सबफाइलम – यूफिलोफाइटिन

वर्ग – मैगनोलियोप्सिडा

गुण– कैपेरलेस

कुल – कैप्पारेसी

वंश – कैप्परिस

प्रजाति – डेसिडुआ

कैर के महत्व एव उपयोग :–

उपयोग	पादप के भागों का नाम	टिप्पणियां
भोजन	फूल, कलियाँ एवं हरे फल	हरे फलों को सब्जी और अचार के रूप में खाया जाता है। कच्चे फल के अचार का व्यावसायिक मूल्य अच्छा होता है।
चारा	हरे या सूखे पत्ते	घास की कमी की अवधि के दौरान बकरियों, भेड़, ऊंट और अन्य जानवरों के लिए आहार पूरक के रूप में उपयोग किया जाता है।
इंधन	लकड़ी	कैर का उपयोग अपनी मूल श्रेणी मे लकड़ी का कोयला और जलाऊ लकड़ी के लिय किया जाता है।
दवा	फल, जड़, छाल	कैर के फल हृदय और गैस्ट्रिक समस्याओं से राहत प्रदान करता है। युवा जड़ों को फोड़े और सूजन को ठीक करने एवं छाल अस्थमा में उपयोगी होती है।

पोषण मूल्य	फल, कलियाँ	पके फल मे कार्बोहाइड्रेट (71%), प्रोटीन (15–18%), वसा (5%) और कच्चे फाइबर (1%) भरपूर होते हैं।
तेल	बीज	बीजों में 20–3% उच्च गुणवत्ता वाला तेल होता है, जो संसाधित होने पर खाने योग्य होता है। इस तेल में 68–6% असंतृप्त वसा अम्ल और 31–4% संतृप्त वसा अम्ल होते हैं।
जलवायु संकेतक	कांटे, फूल और फल	कैर मौसम, अर्थात् तापमान और वर्षा की भविष्यवाणी करने में उपयोगी पाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि यदि केर में खिलना अधिक होता है और फूल गहरे गुलाबी रंग के होते हैं, तो तापमान 45°C से अधिक होता है और वर्षा सामान्य से कम होगी। केर के फूलों और फलों और छतरियों की संख्या के अवलोकन के आधार पर, किसान निम्नलिखित बरसात के मौसम के लिए अपनी फसल किस्मों और फसल प्रणालियों का चयन करते हैं।
पारिस्थि–तिक उपयोग		थार रेगिस्तान में रेत की आवाजाही को रोकने के लिए आश्रय पेटियों के लिए सबसे अच्छी प्रजातियों में से एक पाया गया है। इसका उपयोग लैंडस्केप बागवानी एवं अर्ध रेगिस्तानी और रेगिस्तानी क्षेत्रों में वनीकरण में किया जाता है। यह मिट्टी के कटाव को रोकने में मदद करता है, विशेष रूप से रेतीले क्षेत्रों में हवा के कटाव को नियंत्रित करने में।

बीज अंकुरण :

कैप्परिस डेसिडुआ मुख्य रूप से प्राकृतिक परिस्थितियों में बीज द्वारा उत्पन्न होता है। इसके बीज आकार में काफी भिन्न होते हैं। ताजे बीजों में वजन के हिसाब से 13.4% नमी होती है, जो बीजों की परिपक्वता के स्तर के आधार पर 9% से 19% के बीच होती है। हालांकि, कैर के बीज निष्क्रिय हैं और खराब बीज अंकुरण क्षमता प्रदर्शित करते हैं। पौध की प्रारंभिक वृद्धि काफी धीमी होती है और उन्हें नर्सरी में एक वर्ष की आवश्यकता होती है; तभी अगले बरसात के मौसम की शुरुआत से ठीक पहले खेत में पौधे रोपने के लिए तैयार हो जाते हैं।

एक शोध के अनुसार कैर के बीजों को अंकुरण के लिए 50 प्रतिशत छाया तथा 50 प्रतिशत धूप की जरूरत पड़ती है। कैर के बीजों को तीन अलग अलग मिश्रण जेसे 3:3:1. 5=खाद:बजरी:मिट्टी, 1:1:1=खाद:बजरी:मिट्टी और अंत में केवल बजरी के गमलों में बोया गया जो कि अन्य मिश्रण एवं अभी तक किए गए सभी प्रयोगों में सर्वश्रेष्ठ पाया गया।

निष्कर्ष:

कैप्परिस डेसिडुआ रेगिस्तान और शुष्क क्षेत्रों की एक महत्वपूर्ण बहुउद्देशीय लकड़ी की प्रजाति है। यह वृक्ष भोजन, ईंधन, लकड़ी, दवा आदि के रूप में उपयोगी पाया गया है और यह महत्वपूर्ण पारिस्थितिक भूमिका निभाता है। इसके पोषण मूल्य के साथ–साथ व्यापक लोक औषधीय अनुप्रयोगों को समुदाय और किसानों द्वारा स्वीकार्य पाया गया है। कैर के हर हिस्से के विविध उपयोग होने के कारण इसे भारत में रेगिस्तान की "चंदन की लकड़ी" कहा जाता है ।

रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि कैर के नमूने पोषण में समृद्ध हैं और इसे संरक्षित किया जाना चाहिए क्योंकि यह थार रेगिस्तान का एक महत्वपूर्ण वृक्ष है। व्यापक स्तर पर इस तरह के अध्ययन से कुपोषण के खिलाफ लड़ने के लिए अत्यधिक पोषक तत्वों वाले केपर पौधों के चयन में मदद मिलेगी।

कैर के फलों का आकार, फलों का रंग, पंखुड़ी, गूदा सामग्री शाखाओं का फैलाव और छत्र की सघनता और फूल और फलने के समय के संबंध में विविधता की एक विस्तृत श्रृंखला होती है। हालांकि, इस विविधता का प्रतिनिधित्व करने वाले पौधों को इकट्ठा करने और संरक्षित करने या सबसे वांछनीय रूपों को बढ़ावा देने के लिए अब तक कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं किया गया है। ऐसे पौधों जो अधिक उपज देने वाले, बड़े फल आकार और उच्च लुगदी सामग्री वाले, प्रोटीन से भरपूर हों उनका चयन करने की तत्काल आवश्यकता है।

देशा मीणा
वैज्ञानिक–सी

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

बाँस के आभूषण –उपेक्षित रत्न

डॉ. टी. एन. मनोहरा, वैज्ञानिक–ई
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर

प्रस्तावनाः

बाँस एक बारहमासी तथा काष्ठ से अलग बहुमुखी उपयोग का जंगलों में पाया जाने वाला पर्यावरण हितैषी एवं समाज परक व्यापारिक महत्त्व का वृक्ष है । प्रतिदिन 75 से 400 एमएम तक वृद्धि के साथ यह दुनिया का सबसे तेज गति से बढ़ने वाला नवीकरणीय संसाधन है। पोएशिया नामक घास के परिवार की उप प्रजाति बॉम्बूसाएडिया की इस प्रजाति को बाँस के नाम से जाना जाता है। बाँस की कुल 1450 प्रजातियाँ हैं। एशिया अफ्रिका तथा अमेरिका सहित विश्व के विभिन्न भागों में विगत 500 वर्षों से लगभग 18 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर इसकी खेती की जाती है। बाँस का उपयोग फर्निचर, हस्तकला तथा आभूषण के निर्माण में व्यापक स्तर पर किया जाता है। भारत में यह वन क्षेत्र में 10 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है। त्रिपुरा भारत में बाँस के उत्पादन में अग्रणी है। त्रिपुरा पारंपरिक बाँस शिल्प के अनुसार बॉम्बुसा टुल्डा तथा बॉम्बुसा वुल्गेरिस नामक दो बाँस की प्रजातियों का आभूषण निर्णाम में उपयोग होता रहा है।

बाँस के आभूषण की रूपरेखा प्रकृति, कला एवं विज्ञान का बहुरंगी उत्सव है। विगत दो दसकों में असम के कारिगरों द्वारा विकसित जटिल रूपरेखा उनके कौशल का परिचायक है। मोड़ना, चमकाना तथा बुनने की तकनीक अत्यंत ही मेहनत का काम है तथा आकार छोटा होने का साथ ही यह कठिनाई और बढ़ जाती है। बाँस की सुनहरी चमक बहुमूल्य आभूषम के रूप में इसकी पसंद को बढ़ाती है। रंगों की ग्राह्यता इसकी किस्मों को बढ़ाती है। मोतियों एवं हीरों के साथ नक्काशी करने पर बाँस एक प्राकृतिक कोमलता बिखेरती है। बाँस से निर्मित हस्तशिल्प उत्पाद मुख्यतः पश्चिम बंगाल, असम एवं त्रिपुरा में बनाए जाते हैं। बाँस के आभूषण कुशल कारिगरों द्वारा उत्कृष्ट चाँदी, बारिक तारों के उपयोग से बनाया जाता है। त्रिआयामी छवि प्रदान करने के लिए उनके पास बहुरंगी मिश्रण होता है जिससे विभिन्न आकर्षक रूप एवं वास्तविक छायांकन किया जाता है। इनके विपरित सतह पर विशेष रंग दिए जाते हैं तथा साथ ही रंगों की शालिनता बनाए रखने, मजबूती बनाए रखने तथा रंग–रूप के निखार के साथ मूल्य वृद्थि के लिए यह एक विशेष अभ्यास है। पूर्वोत्तर के असम में उच्च कोटि के बाँस संचय का भंडार है। अत्यंत उच्च कोटि का उत्पाद होने के कारण इसका निर्यात यूएई, सिंगापुर, मलेशिया, जापान, यूरोप, यूएसए तथा थाइलैण्ड में किया जाता है। अकास जनजाति द्वारा बाँस का उपयोग चुड़ियों एवं कान की बालियों के निर्माण हेतु किया जाता है। पूर्वोत्तर का राज्य अरुणाचल प्रदेश बाँस से निर्मित इस प्रकार के आभूषण हेतु प्रसिद्ध है ।

बाँस अपनाएँ – बाँस लगाएः

बाँजॉन हार्डी अपने आकर्षक कहानी के कारण सदा एक ब्रांड के रूप में जाने जाते हैं। बाली में 1975 में प्रारंभ करने के पश्चात् यह ब्रांड कुशल कारिगरों द्वारा निर्मित हस्तशिल्प आभूषण बाली के लोगों के जीवन में खुशियों के रंग भर रहे हैं। अतः इससे साफ प्रतीत होता है कि एक इंडोनेशियन कंपनी धारिता के विकल्प के साथ उस राष्ट्र को समर्पित करती है जिसने उसे प्रोत्साहित किया। इस प्रकार जॉन हार्डी ने प्रत्येक आभूषण की बिक्री के अवसर पर अपने प्रतिष्ठित बाँस संग्रह में बाँस के पौधे (तथा पौधों) लगाने की प्रतिज्ञा की। इस ब्रांड द्वारा 10 वर्ष पूर्व बाँस अपनाएँ–बाँस लागाएँ पहल की गई। जॉन हार्डी द्वारा निर्मित स्टूडियो एवं कार्यशाला में सीईओ रोबर्ट हैन्सन एवं सृजनात्मक निद्रेशक होली बोनेविल बार्डेन ने एक पौधा लगाकर एक बिलियन की संख्या पूरी की। इस कार्यक्रम के माध्यम से स्थानीय परिवारों को पौधे दिए गए जिसका उद्देश्य सिर्फ धारिता नहीं था बल्कि ये पौधे वायु एवं जल को शुद्ध भी करते हैं। स्थानीय लोगों को कृषि का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। बाँस संग्रह से आभूषण हेतु क्रय किया गया कुल पौधा मात्रा एवं मूल्य के अनुसार भिन्न है।

आभूषण में प्रयुक्त बाँस की प्रजातियाँ

1. बांबुसा टुल्डा आरओएक्सबी. (सामान्य नाम–मिर्तिंगा (त्रिपुरा))
2. बांबुसा बाल्पुवाआरओएक्सबी. (सामान्य नाम–बरक (तमिल), भालुका–बीएएनएच/भोलुका–बीएएनएच (असमी), बल्कु बाँस (बंगाली)
3. बांबुसा बैंबॉस (एल.) वीओएसएस (सामान्य नाम–हेबीदिरु (कन्नड़), काँटा बाँस (उड़िसा).
4. बाँबुसा जैंतियाना आर. बी. मजूमदार (सामान्य नाम–तेतुवा (त्रिपुरा), क्याथाँगतू–थैक्तू (बर्मिज)
5. बांबुसा नुतन्स डब्ल्यूएएलएल. ईएक्स एमयूएनआरओ (सामान्य नाम–बिधुली (असम), काली (बीइएनजी.), मकला (त्रिपुरा)
6. बांबुसा पॉलिमार्फा एमयूएनआरओ (सामान्य नाम–मोकल–बीएएनएच (असम)
7. डेंड्रो कैलामस लॉंगीस्पैथस (केयूआरजेड) केयूआरजेड (सामान्य नाम – रुपए (त्रिपुरा)

बांसुली आभूषण:

गुजरात की सोनाली एवं उनकी टीम ने बाँस के उत्पाद पर काम करते हुए यह महसूस किया कि बाँस एक बड़ी चुनौती है। बाँस जैविक अवयव से बना एक ऐसी प्राकृतिक सामग्री है जो उत्पाद को ढँकने हेतु अथवा मिट्टी के विकास के लिए अत्यधिक आर्द्रता को आकर्षित करता है जिसके कारण बाँस का जीवन कम हो जाता है। आर्द्रता एवं बैक्टीरिया के प्रभाव से बचने के लिए सलोनी ने बाँस को फिटकिरी युक्त उपचार की धारणा को विकसित किया। और इस प्रकार बंसुली का आविष्कार हुआ। इस प्रक्रिया के माध्यम से बंसुली ने अपनी कमजोरी को अपनी ताकत में बदला क्योंकि अधिकांश आभूषण व्यापारियों ने इस जटिल प्रक्रिया को उपयोग में नहीं लाना चाहते थे जिससे कि उत्पाद की लंबी आयु, गुणवत्ता एवं स्वास्थ को बढ़ाता है।

रखरखाव–

बाँस के आभूषण के रख–रखाव में सावधानी की आवश्यकता है क्योंकि धातु के अन्य आभूषणों की अपेक्षा टूट–फूट की संभावना अधिक होती है।

विपणन:

बाँस के आभूषण amazon-in, pinterest-com, utsavpedia-com, indiamart-com, जैसे अनेक ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म पर ऑनलाइन उपलब्ध हैं। यूनिसेफ का बाँस आभूषण बाजार संग्रह यूनिसेफ को विश्व के सबसे दुर्बल वर्ग के बच्चों के भविष्य को बचाने एवं संरक्षण प्रदान करने में मदद करता है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों से आए स्थानीय एवं अंतर्राष्ट्रीय उद्यमियों की उपस्थिति से बाँस बाजार में कठिन चुनौती उत्पन्न हो गई है। विगत कुछ वर्षों से पर्यावरण संरक्षण के मद्देनजर उपभोक्ताओं में धारणीय उत्पाद के उपयोग हेतु जाकरूकता फैलाई जा रही है। उत्पाद नवीनता, अवसंरचना विकास तथा सजबूत आपूर्ति श्रृंखला बाँस बाजार को बल प्रदान कर सकते हैं।

संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ:

बाँस एक उपेक्षित रत्न है तथा इसमें अपार संभावनाएँ हैं। बाँस शिल्प राज्यों के ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास का एक बड़ा स्त्रोत है। वर्ष 2018 में बाँस बाजार मूल्य 72.10 यूएसडी बिलियन था तथा 2025 में 98.30 बिलियन यूएसडी का पूर्वानुमान किया गया है। विश्व व्यापार में पारिस्थितिक मापदण्ड के प्रोत्साहन के फलस्वरूप इस उद्योग में निर्यात की अपार संभावनाएँ हैं। मूल्यांकन नीति, परिवहन व्यय, सभी क्षेत्रों में बाँस की खपत आदि समस्याओं का निराकरण नीति निर्धारकों द्वारा किया जाना चाहिए। उच्च उत्पादकता हेतु समूह के वैज्ञानिक प्रबंधन के लिए पर्यावरण हितैषी परिरक्षी के विकास हेतु तकनीकी अनुसंधान की आवश्यकता है। समसामयिक बाजार में उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु पारंपरिक ज्ञान के माध्यम से उत्पादों की नई सृंखला तैयार की जा सकती है।

पूर्वात्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता एवं जागरूकता की कमी एक चुनौती के रूप में देखी जा रही है। बाँस आभूषण के विकास, कारीगरों को सशक्त बनाने सहित अन्य लोगों के कौशल विकास हेतु सार्थक कदम उठाने की आवश्यकता है।

बाँस के भविष्य की अपार संभावनाएँ हैं। तकनीकी दिशानिर्देश तथा उत्साहवर्धन सुदूर के लोगों तक पहुँचनी चाहिए। विभिन्न बाँस अनुसंधान संस्थानों द्वारा बाँस आभूषण सहित विभिन्न विषयों पर पाठयक्रम शुरू करना चाहिए। जागरूकता के साथ कारीगरों के हितों की रक्षा की जानी चाहिए।

चित्रः 01 हार

चित्रः 02 बाँस से निर्मित कान की बाली

चित्रः 03 आधुनिक चूड़ियाँ

चित्रः 04 बाँस से निर्मित पत्तिदार आभूषण सेट

डॉ. टी. एन. मनोहरा
वैज्ञानिक–ई

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

आभासी जल (वर्चुअल पानी)

राजेश कुमार मिश्रा, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर (म.प्र.) – 482 021

हम आमतौर पर जल का उपयोग स्नान करने, पीने और सफाई के लिए करते है, जो हमें तरल रूप में साक्षात दिखाई देता है, वह वास्तविक जल कहलाता है। लेकिन जो जल हमें नहीं दिखाई नहीं देता है, वह आभासी जल (वर्चुअल वाटर) कहलाता है। आभासी जल हमारी दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाली लगभग सभी वस्तुओं जैसे–अनाज, सब्जी, कागज, पेंसिल, कपड़े, मिठाई, मोबाइल, टीवी, फ्रिज इत्यादि में होता है।

चित्रः 01

आभासी जल की अवधारणा सर्वप्रथम प्रोफेसर टोनी एलन, किंग कॉलेज, लंदन ने 1993 में दी थी। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि जल की कमी वाले देश खाद्य पदार्थो का उत्पादन नहीं कर सकते है, इसलिए वे खाद्य पदार्थो को आयात करते है और अपने ही देश में उपलब्ध जल को बचाते हैं। यदि वे खाद्य पदार्थो का उत्पादन करते है तो उन्हें पीने के पानी की समस्या का सामना करना पड़ेगा। आभासी जल की मात्रा का अनुपात भौगोलिक स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। इस शोध के लिए उनको 2002 में स्टाकहोम विश्व जल पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

हमारे देश में एक मनुष्य लगभग एक सौ पैंतीस लीटर प्रतिदिन वास्तविक जल का उपयोग करता है, जबकि एक अनुमान के अनुसार यही मनुष्य लगभग तीन हजार लीटर प्रतिदिन आभासी जल का उपयोग करता है। वह दिन भर में अपने दैनिक उपयोग जैसे–खाना, कागज, कपड़ा आदि में करता है और उसे जानकारी ही नहीं होती है कि वह लगभग तीन हजार एक सौ पैंतीस लीटर प्रतिदिन जल का उपयोग कर चुका है। किसी समारोह में एक थाली में दो हजार लीटर आभासी जल होता है।

भारत बीते लगभग एक दशक से जलसंकट से जूझ रहा है। देश में करीब 60 करोड़ लोग पीने के पानी की समस्या से जूझ रहे हैं। दूसरी ओर देश से सबसे ज्यादा पानी पड़ोसी देशों में निर्यात किया जा रहा है। साल 2020 में पड़ोसी देश भारत से मिनरल और नेचुरल वॉटर के सबसे बड़े खरीददार बनकर उभरे हैं। भारत अलग–अलग देशों को पानी निर्यात करता है, जिसमें सबसे ऊपर चीन और फिर मालदीव हैं। आभासी जल के निर्यात में भारत सबसे ऊपर है, ऐसी फसलें निर्यात होती है, जिनकी पैदावार में ज्यादा पानी लगता है।

ये पानी केवल मिनरल वॉटर ही नहीं, बल्कि इसमें वास्तविक जल भी शामिल है। इन पांच सालों में देश से लगभग 23,78,227 लीटर मिनरल वाटर और 8,69,815 लीटर वास्तविक जल का निर्यात हुआ। इसमें चीन सबसे बड़ा खरीददार रहा। इसे हमने कई किस्म के पानी का निर्यात किया, लेकिन केवल मिनरल वॉटर से हमें लगभग 31 लाख रुपए हासिल हुए। वहीं मालदीव, सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात में भी पानी की कई किस्में हमारे यहां से आयात की गई।

भारत की पानी निर्यात इंडस्ट्री कितनी बड़ी है, इसका अनुमान इन आकड़ों से कर सकते हैं कि कोरोना महामारी के दौरान जब ज्यादातर देशों में एक–दूसरे के लिए अपनी सीमाएं बंद कर रखी थीं, तब भी यानी केवल कुछ ही महीनों के भीतर देश ने अलग–अलग देशों को लगभग 155.86 लाख रुपए का पानी निर्यात किया।

ये तो हुआ सीधे पानी निर्यात का आंकड़ा। इसके अलावा भी एक पहलू है, जो ज्यादा चौंकाता है वो यह कि भारत आभासी जल के निर्यात में सबसे आगे खड़ा देश है। ये आभासी निर्यात भला क्या है ? आभासी निर्यात से हमारा तात्पर्य उन फसलों से है, जिनकी पैदावार ज्यादा पानी में होती है। ऐसी ज्यादा पानी लेकर उगी फसलों को भारत दूसरे देशों को निर्यात करता है तो ये भी एक किस्म से पानी का निर्यात ही है। तब खरीददार देश अपना पानी बचाकर कम पानी वाली फसलें उगाते हैं और भूमिगत पानी का सही इस्तेमाल करते हैं।

जैसे एक कप चावल बनाने के लिए आप कितना पानी लेते हैं? लगभग इतना ही या फिर और भी कम। लेकिन इसे उपजाने के लिए जो पानी लगता है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। एक किलो चावल उपजाने में लगभग 2,173 लीटर पानी खर्च होता है। अब इसी धान को भारत दूसरे देशों को निर्यात करेगा तो ये पानी का आभासी निर्यात भी होगा । इससे केवल अन्न ही बाहर नहीं जा रहा, बल्कि पानी की भारी मात्रा भी जा रही है।

वर्ष 2014–15 में देश ने 37.2 लाख टन बासमती चावल दूसरे देशों को निर्यात किया था। इसमें लगभग 10 ट्रिलियन लीटर पानी खर्च हुआ था। यानी ये पानी भले ही दिखाई न दे रहा हो, लेकिन ये भी दूसरे देशों में बगैर कीमत ही निर्यात हो रहा है।

इस पर बातचीत इसलिए जरूरी है कि फिलहाल देश में

पेयजल का भारी संकट है। नीति आयोग ने समग्र जल प्रबंधन सूचकांक की रिपोर्ट जारी की, जिसमें बताया गया कि देश में करीब 60 करोड़ लोग पानी की गंभीर समस्या का सामना कर रहे हैं। करीब दो लाख लोग स्वच्छ पानी न मिलने के चलते हर साल प्राण गंवा देते हैं। ये आंकड़े साल 2018 के जून में जारी हुए थे। अब स्पष्ट है कि कोरोना के दौरान हालात खास नहीं सुधरे हैं। लिहाजा इस आंकड़े में बढ़ोतरी ही हुई होगी। रिपोर्ट में ये भी कहा गया कि साल 2030 तक हालात और बिगड़ सकते हैं, जिसका सीधा असर देश की सकल घरेलू उत्पाद (जी डी पी) पर होगा।

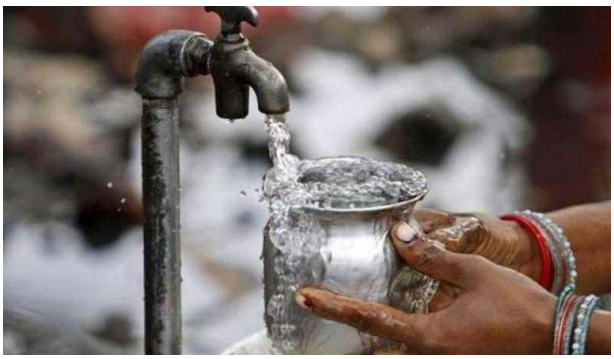

चित्रः 02

देश की बड़ी आबादी के पास पीने के पानी की कमी होने के बाद भी भूमिगत जल दूसरे देशों को निर्यात किया जा रहा है, जिससे हालात और खराब हो रहे हैं। यही सब देखते हुए साल 2019 में सरकार ने जलजीवन मिशन शुरू किया। इसके तहत ग्रामीण इलाकों में साल 2024 तक साफ और भरपूर पानी उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है। इस पर काम भी शुरू हो चुका है लेकिन फिलहाल इसके नतीजे सामने आना शेष हैं।

पानी का उपयोग रोजमर्रा की जरूरतों के अलावा अन्य कई कार्यो के लिए किया जाता है। इसमें रोजमर्रा के काम की तुलना में कई गुणा अधिक जल की खपत होती है। यदि ऐसे ही हालात रहे तो आने वाले समय में इन्हीं कारणों से जल संकट का खतरा उत्पन्न हो जाएगा। बदलती जीवन शैली के कारण भी इसके लिए जल की खपत बहुत अधिक हो गई है। इसमें शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्र शामिल हैं। जहां शहरी क्षेत्र में कार वाश, अपार्टमेंट में साफ–सफाई और उद्योग धंधों में आभासी जल की खपत होती है, वहीं ग्रामीण क्षेत्र में फसलों के उत्पादन पर इसका बड़ी मात्रा में उपयोग होता है।

हाल ही में 'वॉटरऐड' नामक एक संस्था के सर्वेक्षण में पानी को लेकर एक सर्वेक्षण किया गया है। इस सर्वेक्षण में सबसे बड़ी बात यह सामने आई कि भले ही हम सीधे तौर पर बहुत कम पानी का इस्तेमाल करते हों लेकिन उसका कई गुना ज्यादा अधिक आभासी जल का उपयोग हो रहा है। जब तक इसके उपयोग को न्यूनतम स्तर पर नहीं लाया जाता है तब तक जल संरक्षण की बात को सफल नहीं बनाया जा सकता है। भारत में भी इस समस्या का हल ढूंढ़ना होगा।

भारत में एक व्यक्ति औसतन 3000 लीटर पानी का उपयोग करता है। इस 3,000 लीटर में आभासी जल की बड़ी मात्रा शामिल है। भारत में शहरों और गांवों में रहने वाले लोगों के लिए रोजाना इस्तेमाल होने वाले पानी की मात्रा निर्धारित की गई है। शहरों के लिए 150 लीटर और गांवों के लिए 55 लीटर रोजाना। इस तरह हम देखें तो भारत का हर व्यक्ति शहर के लिए निर्धारित प्रति व्यक्ति रोजाना जल इस्तेमाल के मुकाबले में 20 गुना ज्यादा और गांवों के लिए निर्धारित मात्रा के मुकाबले करीब 50 गुना ज्यादा पानी इस्तेमाल करता है। आभासी जल का इस्तेमाल किस पैमाने पर होता है, उसका अंदाजा इस उदाहरण से लगा सकते हैं अगर चार सदस्यों वाले एक परिवार में रोजाना 1 किलोग्राम चावल का इस्तेमाल होता है तो वहां करीब 84,600 लीटर पानी की खपत होती है।

दुनिया के भूमिगत जल का 24 फीसदी अकेले भारत इस्तेमाल करता है। यानी भारत दुनिया में भूमिगत जल का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। साल 2000 से 2010 के बीच भारत में भूमिगत जल के घटने की दर 23 फीसदी बढ़ गई है। वैसे तो कई विकसित देशों की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति पानी का इस्तेमाल बहुत कम है। लेकिन बड़ी आबादी वाले उन देशों की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति रोजाना पानी का इस्तेमाल काफी है जहां बड़ी आबादी जल संकट का सामना करती है।

खाद्यान्न निर्यात में हमारा देश विश्व में तीसरे स्थान पर है। इस प्रकार से आभासी जल का निर्यात हो रहा है। वर्तमान में हम जल बचाने के लिए बहुत ही ईमानदारी से ध्यान दे रहे है कि जल की बचत, पुनः उपयोग, वर्षा जल संचयन इत्यादि लेकिन जानकारी के अभाव में आभासी जल की ओर कभी ध्यान ही नहीं गया। हमारे देश में जल की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ ही रही है। इसके लिए हमें आभासी जल की बचत करना होगी।

सर्वप्रथम हम अन्न, फलों इत्यादि को आवश्यकता अनुसार उपयोग में लें। व्यर्थ में फेंकने से पहले सोचें कि उसे बनाने के लिए कितनी जल की मात्रा लगी है। हमारी सरकार को चाहिए कि हमारे सूखे खाद्य पदार्थों के भंडारण की उचित व्यवस्था हों, जिस प्रकार से वास्तविक जल बचाने का अभियान चला है, उसी प्रकार से आभासी जल बचाने के लिए जागरुकता अभियान चलाना चाहिए।

राजेश कुमार मिश्रा
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका
अंक-06
जुलाई–दिसंबर, 2021

मानस राष्ट्रीय उद्यान – पूर्वोत्तर भारत मे एक सींग वाले भारतीय गैंडों का सफल स्थानांतरण एवं पुनर्स्थापन

अजय कुमार, वैज्ञानिक डी, सौरव बरुआ, कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता एवं चिरंजीत हजारिका, क्षेत्र सहायक
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट, असम

प्रस्तावना:

मानस राष्ट्रीय उद्यान बोडोलैंड प्रादेशिक परिषद (BTC), असम के बासा और चिरांग जिलों में 500 वर्ग किमी के क्षेत्र में फैला हुआ है और 26°45′ से 6°50′ उत्तरी अक्षांश और 90°30′ से 91°15′ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। भूटान से सटे पूर्वी हिमालय की तलहटी में स्थित इस मानस क्षेत्र में छः राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विख्यात – विश्व धरोहर स्थल, राष्ट्रीय उद्यान, बाघ रिजर्व, जैवमंडल रिजर्व, हाथी रिजर्व और महत्वपूर्ण पक्षी क्षेत्र हैं। मानस राष्ट्रीय उद्यान भारतीय, इथियोपियाई और भारत–चीनी क्षेत्रों के संगम पर स्थित है, जो इसकी अवस्तिथि को अद्वितीय बनाता है। यह आकर्षक परिदृश्य और दृश्यों के साथ सबसे समृद्ध जैव विविधता क्षेत्रों में से एक है।

1917 में मानस के मुख्य क्षेत्र को जानवरों के शिकार करने और पकड़ने पर रोक लगाने के लिए संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया था। 1928 में यह क्षेत्र बढ़कर 360 वर्ग किमी और 1955 में 391 वर्ग किमी हो गया। 1977 में यह मानस टाइगर प्रोजेक्ट का मुख्य क्षेत्र बन गया, 1985 में इसे विश्व धरोहर स्थल (यूनेस्को) घोषित किया गया। 1989 में इसे 519 वर्ग किमी के क्षेत्र के साथ बायोस्फीयर रिजर्व और अंत में राष्ट्रीय उद्यान का दर्जा दिया गया था। 2002 में इसे प्रोजेक्ट हाथी के तहत बासा–मानस हाथी रिजर्व के कोर जोन के रूप में नामित किया गया था। प्रशासनिक रूप से इसे तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है – पश्चिमी रेंज (पानबारी), सेंट्रल रेंज (बांसबारी) और पूर्वी रेंज (भुइयांपारा)। मानस नाम तिब्बत में उत्पन्न होने वाली शक्तिशाली ब्रह्मपुत्र नदी की सहायक नदी मानस से लिया गया है। पूरे पार्क में प्रशासन के साथ–साथ वन्यजीवों की निगरानी के लिए बुनियादी ढांचा विकसित किया गया है, जिसमें विभिन्न भवन जैसे कार्यालय, शिविर, स्टाफ क्वार्टर, बैरक, वॉच टावर के अतिरिक्त पुल, सड़कें, वाहन, वायरलेस उपकरण, हथियार, नाव और हाथी आदि संसाधन सम्मिलित हैं।

मानस राष्ट्रीय उद्यान में दो जैवोम हैं, घास का मैदान और जंगल। पार्क का लगभग आधा हिस्सा तराई और भाबर प्रकार के घास के मैदानों से आच्छादित है, तटवर्ती क्षेत्रों में कई प्रजातियों के घास के मैदान और जंगल हैं। मानस राष्ट्रीय उद्यान की जलवायु उपोष्णकटिबंधीय प्रकृति की है। वार्षिक वर्षा 3,000–4,000 मिमी के बीच होती है और तापमान 6–37 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है जो जुलाई–अगस्त के महीनों में सबसे अधिक और दिसंबर–जनवरी में सबसे कम होता है। समुद्र ताल से ऊंचाई 40–170 मीटर और औसतन 85 मीटर के बीच है। तीन ऋतुएँ हैं, अर्थात् गर्मी (मार्च–मई), मानसून (जून–सितंबर), सर्दी (दिसंबर–फरवरी)। मानस में शाकीय पौधों की 337 प्रजातियां, पेड़ों की 96 प्रजातियां और झाड़ियों की 94 प्रजातियां पायी जाती हैं। विविध वनस्पतियों में 28 प्रजातियों से संबंधित ऑर्किड की कुल 45 प्रजातियां शामिल हैं। कई औषधीय और आर्थिक रूप से महत्तवपूर्ण पौधे जैसे डिलेनिया इंडिका, *राउवोल्फिया सर्पेन्टिना, डायोस्कोरिया बल्बिफेरा* आदि भी यहाँ मिलते हैं। इन पौधों को मानस की परिधि में रहने वाले स्थानीय समुदायों द्वारा विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। उद्यान में स्तनधारी जीवों की 55 प्रजातियाँ, पक्षियों की 380 प्रजातियाँ, सरीसृपों की 50 प्रजातियाँ और उभयचरों की 3 प्रजातियाँ अभिलिखित की गई हैं। इन वन्यजीवों में से 31 संकटापन्न प्रजातियाँ हैं और 21 स्तनधारी प्रजातियों को भारत के वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 की अनुसूची–I में सम्मिलित किया गया है। यहां हाथी, बाघ, गौर, जंगली भैंस, तेंदुआ, विभिन्न हिरण, बारहसिंघा, टोपीवाला लंगूर, जंगली सूअर, भालू, उदबिलाऊ और विभिन्न प्रकार के सरीसृप, पक्षियों और कीड़ों के साथ–साथ पिग्मी हॉग, सुनहरा लंगूर और बंगाल फ्लोरिकन जैसी कुछ अत्यधिक लुप्तप्राय प्रजातियां पायी जाती है। यह न केवल भारत का एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्यान है, बल्कि पूरे भारत–भूटान क्षेत्र की हाथी आबादी के लिए मानस राष्ट्रीय उद्यान एक महत्वपूर्ण प्रवासी गलियारा भी है।

मानस टाइगर रिजर्व:

मानस टाइगर रिजर्व (एम.टी.आर.) में मानस नेशनल पार्क और बारनदी वन्यजीव अभयारण्य के क्रमशः 500 वर्ग किमी और 26.22 वर्ग किमी के कोर क्षेत्र के साथ ही 2310.88 वर्ग किमी के बफर क्षेत्र सम्मिलित हैं। पूर्वी बफर में कुछ गांवों के साथ पश्चिमी बफर में लगभग 125 वन गांव हैं। एम.टी.आर. बारपेटा, नलबाड़ी, बोंगाईगांव, कोकराझार, दरांग और कामरूप जिलों में फैला हुआ है। एम.टी.आर.का वन क्षेत्र तीन प्रमुख नदियों मानस, हकुवा और बेकी तथा इनकी सहायक नदियों जिसमें संकोश, सरलभंगा, हेल, आई, चंपामती, बेकी, फुमारा, पगलाडिया और धनसिरी शामिल हैं, का जलग्रहण क्षेत्र भी बनाता है। इसमें स्थानीय रूप से 'बील' के रूप में जाने वाले कई जल निकाय भी हैं। क्षेत्र में बीलों और नदियों में पानी का प्रमुख स्रोत मध्य मई और मध्य अक्तूबर के बीच चार महीनों की अवधि के दौरान होने वाली वर्षा है। मानस, हकुवा और बेकी जैसी कुछ बारहमासी नदियों को छोड़कर, भाबर क्षेत्र में अधिकांश अन्य छोटे और उथले जलाशय सर्दी और गर्मी के महीनों में सूख जाते हैं। रिजर्व बाघ और उसकी शिकार प्रजातियों के लिए एक उत्कृष्ट आवास प्रदान

करता है। चूंकि रिजर्व भारत–भूटान अंतरराष्ट्रीय सीमा के साथ चलता है, इसलिए ये प्रजातियां अंतरराष्ट्रीय सीमा के पार भूटान के रॉयल मानस नेशनल पार्क में प्रवास करती हैं, जो सन्निहित ट्रांस–सीमा मानस संरक्षण क्षेत्र बनाती हैं। मानस टाइगर रिजर्व के बफर जोन में विभिन्न वन प्रभागों और एक वन्यजीव प्रभाग द्वारा प्रशासित 19 वन रिजर्व शामिल हैं। वन प्रभागों में कचुआगांव, हल्तुगांव, आई, उत्तरी कामरूप और पश्चिमी असम वन्यजीव प्रभाग शामिल हैं।

पूर्व में मानस राष्ट्रीय उद्यान में गैंडों की स्थितिः

भारतीय गैंडे का पसंदीदा आवास जलोढ़ बाढ़ के मैदान और हिमालय की तलहटी के साथ ऊंचे घास के मैदान वाले क्षेत्र हैं। पूर्व में, गंगा के मैदानों में बड़े पैमाने पर वितरित, आज यह प्रजाति भारत–नेपाल तराई और उत्तरी पश्चिम बंगाल और असम में छोटे आवासों तक ही सीमित हो गयी है। काजीरंग राष्ट्रीय उद्यान भारत में गैंडों की सबसे बड़ी आबादी का घर है और यहाँ लगभग 2400 गैंडे हैं। भारत–भूटान अंतरराष्ट्रीय सीमा के साथ असम में मानस राष्ट्रीय उद्यान, कभी एक सींग वाले भारतीय गैंडों का संपन्न घर था और वर्ष 2001 से एक दशक पहले तक मानस मे लगभग 100 गैंडे थे, लेकिन एक दशक तक चली बोडोलैंड जातीय अशांति जोकि 2001 में समाप्त हुई,के दौरान मानस ने गैंडों की अपनी पूरी आबादी खो दी थी। काजीरंगा के कुल क्षेत्र के अनुपात में यहाँ गैंडों की संख्या इसकी वहन क्षमता से अधिक हो गयी है, अतः असम मे गैंडों के लिए और नए आवासों के आश्यकता बढ़ गयी है। मानस के वन क्षेत्र और घास के मैदानों से युक्त क्षेत्र गैंडों के पुनर्स्थापन के लिए एक आदर्श और प्राकृतिक आवास बनाते हैं। उद्यान के प्राकृतिक आवास को बनाए रखने में गैंडों की महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान मे रखते हुए, असम सरकार ने 2005 में एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रमः भारतीय राइनो विजन 2020 (IRV 2020) के हिस्से के रूप में गैंडों को मानस में फिर से छोड़ने का फैसला किया। मानस राष्ट्रीय उद्यान अब IRV 2020 के अंतर्गत मानस राइनो पुनर्वास परियोजना के माध्यम से काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान और पोबितोरा वन्यजीव अभयारण्य से गैंडों को स्थानांतरित करके और गैंडों की संख्या प्राकृतिक तरीके से बढ़ाने के लिये जंगल में सही परिस्थितियों का निर्माण करके अपना खोया हुआ गौरव वापस पाने के लिए क्रियाशील है।

भारतीय राइनो विजन 2020 और मानस में गैंडों का पुनर्स्थापनः

IRV 2020 असम वन विभाग, वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर (WWF) और अंतर्राष्ट्रीय राइनो फाउंडेशन (IRF) की एक संयुक्त पहल है। यह नवंबर 2005 में असम के भीतर गैंडों के स्थानांतरण के लिए टास्क फोर्स द्वारा 2020 तक विभिन्न उपयुक्त संरक्षित क्षेत्रों (PAs) में गैंडों की आबादी को पुर्नस्थापित करने के दृष्टिकोण के साथ परिकल्पित किया गया था। इस कार्यक्रम का उद्देश्य पूरे असम राज्य में नए संभावित आवासों (संरक्षित क्षेत्रों) में गैंडों की आबादी को वर्ष 2020 तक बढ़ाकर 3000 करना था। इस कार्यक्रम में अनेक सहयोगी हैं। सरकारी विभाग, अंतरराष्ट्रीय संगठन, स्थानीय गैर–सरकारी संगठन (एनजीओ) और स्थानीय समुदायों के लोग एक साथ मिलकर काम कर रहे हैं ताकि अपने उद्देश्यों तक पहुंच सकें। मानस में अतीत के गैंडों की आबादी को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले ऐसे संरक्षित क्षेत्र के रूप में चुना गया, जहां काजीरंगा और पोबीतोरा से स्थानांतरण के माध्यम से गैंडों को बसाया गया। IRV 2020 के तहत 2008 से 2021 तक 22 गैंडों को पोबितोरा और काजीरंगा से स्थानांतरित कर मानस में छोड़ा गया है और पिछले 15 वर्षों में काजीरंगा बाढ़ के दौरान बचाए गए लगभग 20 पाले हुए गैंडों को भी मानस में छोड़ा गया। मानस में वर्तमान गैंडों की आबादी उद्यान के 500 वर्ग किलोमीटर के मुख्य क्षेत्र में 48 है और पिछले साढ़े चार वर्षों में अवैध शिकार का कोई मामला भी सामने नहीं आया है।

चित्रः 01

वर्ष 2021 तक भारत में IRV 2020 के 3,000 गैंडों की आबादी का लक्ष्य लगभग प्राप्त कर लिया गया है, लेकिन गैंडे को योजनान्तर्गत विभिन्न संरक्षित क्षेत्रों में से केवल एक, मानस, में ही पुनर्स्थापित किया जा सका है। अभी अन्य संरक्षित क्षेत्र जैसे बूढासापोरी अभ्यारण्य, लाओखोवा अभ्यारण्य और डिब्रू–सैखोवा राष्ट्रीय उद्यान में गैंडों को स्थानांतरित किया जाना बाकी है। गेंडे घास के मैदान के पारिस्थितिकी तंत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और पिछले डेढ़ दशकों में मानस में उनका पुनर्स्थापन घास के मैदानों के प्रभावी प्रबंधन को सक्षम करेगा जो न केवल गैंडों के लिए बल्कि अन्य घास के मैदानों पर निर्भर रहने वाले जीवों के लिए प्राकृतिक आवास प्रदान करेगा।

अजय कुमार
वैज्ञानिक–डी

जुलाई–दिसंबर, 2021 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम

वन महोत्सव

संस्थान के सौजन्य से कैन्द्रीय विद्यालय भारतीय सैन्य अकादमी, देहरादून परिसर में दिनांक 22 से 23 जुलाई, 2021 को वन महोत्सव का आयोजन किया गया।

स्वतंत्रता दिवस

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में 15 अगस्त, 2021 को 75वां स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। समारोह के मुख्य अतिथि श्री अरुण सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. एवं निदेशक, वन अनुसंधान संस्थान द्वारा झंडा रोहण किया गया। इस अवसर पर श्री अरुण सिंह रावत महोदय ने सभा को संबोधित किया तथा उन्होंने सभी से वानिकी से संबंधित कार्यों के माध्यम से राष्ट्र की प्रगति में योगदान देने की अपील की। उन्होंने सेना, पुलिस कर्मियों, अर्धसैनिक बल, डॉक्टरों, नर्सों और अन्य फ्रंट लाइन वर्कर द्वारा कोरोना काल के दौरान उनके महत्वपूर्ण योगदान की सराहना की। इसके उपरांत भा.वा.अ.शि.प. के विभिन्न संस्थानों/केंन्द्रो के अधिकारियों/वैज्ञानिकों के साथ–साथ वानिकी से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य करने वाले कार्मिकों को भी पुरस्कार प्रदान किए गए। भारतीय वनपालों को भी उनके उत्कृष्ट कार्य के लिए पुरस्कृत किया गया।

हिंदी पखवाड़ा

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में हिंदी अनुभाग के सौजन्य से 01 से 14 सितम्बर, 2021 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इस पखवाड़े के दौरान आयोजित हिंदी टकंण, टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, निबंध लेखन, स्वरचित कविता प्रतियोगिता एवं हिंदी भाषण प्रतियोगिता में कर्मचारियों ने बड़–चढ़ कर भाग लिया।

वन पाल शहीद दिवस

संस्थान परिसर में दिनांक 11 सितंबर, 2021 को राष्ट्रीय वन पाल शहीद दिवस के उपलक्ष्य पर वन पाल शहीद स्मारक पर पुष्प सुमन अर्पित करते हुए वन एवं वन्यजीवों की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीरों को याद किया गया। इस अवसर पर श्री अरूण सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., श्री भारत ज्योति, निदेशक, आईजीएनएफए, श्री राजीव भारती, पीसीसीएफ, उत्तराखण्ड, श्री अनूप सिंह, महानिदेशक, भारतीय वन सर्वेक्षण, श्री धनंजय मोहन, निदेशक, वन्य जीवन संस्थान तथा संस्थान के वैज्ञानिक और कर्मचारी उपस्थित थे।

गांधी जयंती

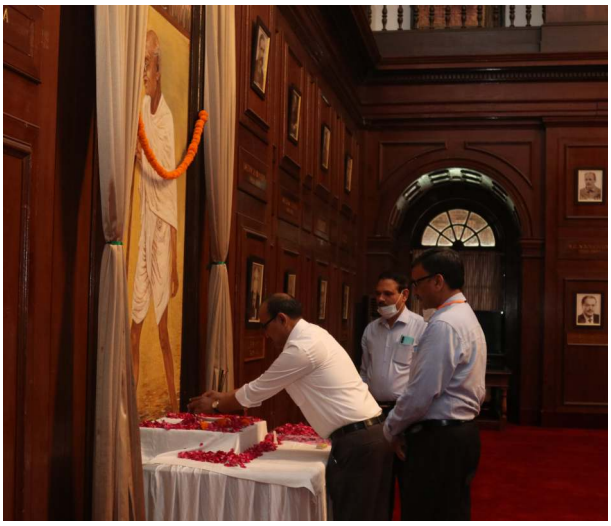

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून द्वारा 2 अक्तूबर, 2021 को महात्मा गांधी की 152 वीं जयंती मनाई गई। इस अवसर पर अरुण सिंह रावत, निदेशक वन अनुसंधान संस्थान और अन्य अधिकारियों/कार्मिकों ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी को पुष्पांजलि अर्पित की। तत्पश्चात, सभी अधिकारियों/कार्मिकों द्वारा स्वच्छता बनाए रखने की शपथ ली गई। संस्थान के परिसर में भी सफाई अभियान चलाया गया।

सरदार वल्लभ भाई पटेल जी की जयंती

वन अनुसंधान संस्थान मे 31 अक्टूबर, 2021 को सरदार वल्लभभाई पटेल जी की 146 वीं जयंती मनाई गई। इस अवसर पर निदेशक वन अनुसंधान संस्थान श्री अरुण सिंह रावत महोदय ने सरदार वल्लभ भाई पटेल जी के चित्र पर माल्यार्पण कर पुष्पांजलि अर्पित की तथा संस्थान के सभी संभागीय अधिकारियों एवं कर्मचारियों को राष्ट्रीय एकता एवं आंतरिक सुरक्षा के लिए कार्य करने की शपथ दिलाई।

संविधान दिवस

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून द्वारा 26 नवंबर, 2021 को संविधान दिवस मनाया गया। भारत सरकार द्वारा भारत के नागरिकों के मध्य संविधान के महत्व को प्रसारित करने और डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए हर वष 26 नवंबर को संविधान दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर संस्थान के सभी अधिकारियों, कर्मचारियों एवं संविदा कर्मियों ने प्रातः 11:00 बजे पोर्टल की वेबसाइट *https://readpreamble.nic.in* पर संविधान की प्रस्तावना पढ़कर प्रमाण पत्र डाउनलोड किया। इस अवसर पर संस्थान के अधिकारियों व कर्मचारियों ने भारत सरकार द्वारा संवैधानिक लोकतंत्र विषय पर आयोजित ऑनलाइन क्विज में भाग लेकर प्रमाण पत्र प्राप्त किया।